

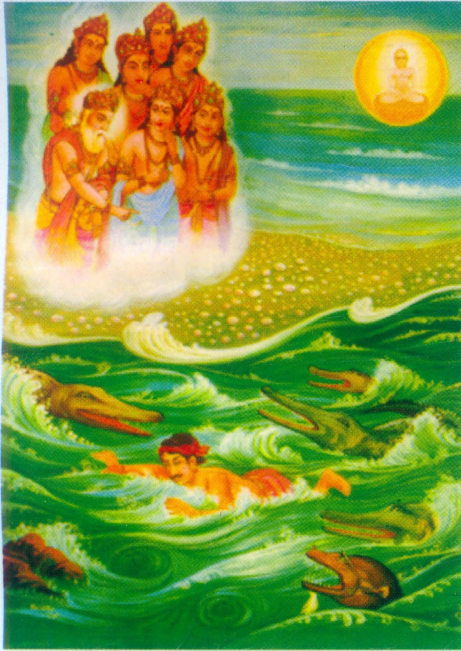
श्रमण ŚRAMAṆA

A Quarterly Research Journal of Jainology

Vol. LXVII

No. II

April-June 2016



वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र शशाङ्कान्तान्, कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या।
कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-नक्रचक्रं, को वा तरीतुमलम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥

भक्तामरस्तोत्र-4



Parshwanath Vidyapeeth, Varanasi

Established : 1937

श्रमण

ŚRAMAᅇA

(Since 1949)

A Quarterly Research Journal of Jainology

Vol. LXVII

No. II

April-June, 2016

Editor

Dr. Shriprakash Pandey

Associate Editors

Dr. Rahul Kumar Singh

Dr. Om Prakash Singh



Parshwanath Vidyapeeth, Varanasi

(Established: 1937)

(Recognized by Banaras Hindu University as an
External Research Centre)

ADVISORY BOARD

Dr. Shugan C. Jain

New Delhi

Prof. Cromwell Crawford

Univ. of Hawaii

Prof. Anne Valley

Univ. of Ottawa, Canada

Prof. Peter Flugel

SOAS, London

Prof. Christopher Key Chapple

Univ. of Loyola, USA

Prof. Ramjee Singh

Bheekhampur, Bhagalpur

Prof. Sagarmal Jain

Prachya Vidyapeeth, Shajapur

Prof. K.C. Sogani

Chittaranjan Marg, Jaipur

Prof. D.N. Bhargava

Bani Park, Jaipur

Prof. Prakash C. Jain

JNU, Delhi

EDITORIAL BOARD

Prof. M.N.P. Tiwari

B.H.U., Varanasi

Prof. K. K. Jain

B.H.U., Varanasi

Dr. A.P. Singh, Ballia

Prof. Gary L. Francione

New York, USA

Prof. Viney Jain, Gurgaon

Dr. S. N. Pandey

PV, Varanasi

ISSN: 0972-1002

SUBSCRIPTION

Annual Membership

For Institutions : Rs. 500.00, \$ 50

For Individuals : Rs. 300.00, \$ 30

Per Issue Price : Rs. 150.00, \$ 15

Life Membership

For Institutions : Rs. 5000.00, \$ 250

For Individuals : Rs. 2000.00, \$ 150

Membership fee & articles can be sent in favour of

Parshwanath Vidyapeeth, I.T.I. Road, Karaundi, Varanasi-5

PUBLISHED BY

Shri Indrabhooti Barar, for Parshwanath Vidyapeeth, I. T. I. Road,
Karaundi, Varanasi 221005, Ph. 0542-2575890

Email: pvpvaranasi@gmail.com

Theme of the cover:

Bhaktāmara-stotra, Verse-4 based picture, Yantra & Mantra

With curtesy : Sacitra Bhaktāmara-stotra by Shri Sushil Suri

NOTE: The facts and views expressed in the Journal are those of authors only. (पत्रिका में प्रकाशित तथ्य और विचार लेखक के अपने हैं।)

Printed by- Mahaveer Press, Bhelupur, Varanasi

सम्पादकीय

वर्षावास का समय आसन्न है। यह काल धर्मारधना के लिये सर्वोत्तम माना गया है। धर्मारधना और तपःसाधना के लिये वर्षावास, चातुर्मास का समय सर्वथा अनुकूल माना जाता है। २७ नक्षत्रों में वर्षाकाल के १० नक्षत्र और १२ महीने में चातुर्मास के ४ मास ऋतुचक्र की धुरी हैं। श्रावण-भाद्रपद के दो महीनों में एक ही स्थान पर निवास करने को जैन आगमों में वासावास कहा गया है। आसोज और कार्तिक मास मिलकर चातुर्मास के चार मास होते हैं। चातुर्मास की यह परम्परा वैदिक, जैन और बौद्ध तीनों परम्पराओं में पाई जाती है। परिव्राजक, ऋषि, श्रमण, निर्ग्रथ एक स्थान पर इस अवधि में रुक कर धर्मारधना करते हैं। जैन परम्परा में आज भी चातुर्मास की परम्परा अक्षुण्ण रूप से चली आ रही है। आषाढी पूनम से कार्तिक पूनम तक चार महीनों तक पादविहारी जैन श्रमण एक ही स्थान पर निवास करते हैं। वैसे तो चातुर्मास में हिंसा का वर्जन, इन्द्रियों का संयम और धर्मारधना करने का विधान सम्पूर्ण भारतीय संस्कृत में व्याप्त है किन्तु जैन परम्परा में इसका विशेष महत्त्व है। जैन परम्परा में चातुर्मास या वर्षावास के दो प्रमुख उद्देश्य माने गये हैं- (१) जीवदया अथवा जीव विराधना व हिंसा से बचाव करना तथा, (२) धर्मारधना या व्रत आराधना। चूंकि वर्षाकाल का समय सूक्ष्म, बादर, त्रस और स्थावर अनन्तानन्त जीवों तथा अनेक प्रकार की वनस्पतियों की उत्पत्ति का समय होता है, इसलिये श्रमण के लिये यह विधान किया गया कि ऐसे समय में जीवों की हिंसा से बचने के लिये वह इधर-उधर विहार, गमनागमान, यात्रा न करे- 'वासावासे गामाणुगामं दूडुज्जेज्जा'। धर्मारधना के लिये यह समय इसलिये अनुकूल है क्योंकि इसमें वर्षा के कारण भूमि की उष्णता कम हो जाती है, वर्षा की रिमझिम से पाचनशक्ति कमजोर पड़ जाती है, न अधिक भूख लगती है न अधिक प्यास। ऐसे वातावरण के कारण यह ऋतु तपस्या के लिये अत्यन्त अनुकूल होती है। यही कारण है कि श्रावण-भाद्रों में जैन समाज में जितनी तपस्या होती है उतनी समूचे वर्ष में भी नहीं होती। सभी अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार उपवास, बेला, तेला, अठाई, मासखमण आदि तप की आराधना में जुट जाते हैं। उपवास के अलावा भी आर्यबिल, एकासना, द्रव्य-संयम आदि द्वारा भी तप की आराधना की जा सकती है। साधक कुछ भी न करे यदि वह रात्रि-भोजन का त्याग भी चार महीने तक कर ले तो दो महीने का निराहार तप तो वह कर ही लिया। तपाराधना के साथ चातुर्मास से आरोग्य लाभ भी होता है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता क्योंकि कम खाने से पाचनतन्त्र ठीक रहता है। आर्यबिल से अनेक उदर रोग ठीक हो जाते हैं।

चातुर्मास में पड़नेवाला पर्युषण पर्व पर्वाधिराज है। पर्व तो वह है जो जिसमें या जिन दिनों में विशेष धर्म साधना द्वारा आत्मा को भावित किया जाये। किन्तु

पर्युषण के आठ दिन महापर्व या पर्वाधिाराज कहलाते हैं। इसकी उत्तमता और श्रेष्ठता इसी में निहित है कि यह मानव आत्मा के विकास और विशुद्धि की प्रेरणा देता है। पर्युषण को 'पञ्जोसवणा', 'पञ्जूसणा' या 'पञ्जोसमणा' भी कहा जाता है जिसका अर्थ है- पर्युपासना। 'उपासना' शब्द जिसका सीधा अर्थ होता है अपने इष्ट के सम्मुख या समीप आना। इसमें जब 'परि' उपसर्ग लगता है तो उसका अर्थ अधिक व्यापक हो जाता है। अर्थात् सम्पूर्ण निष्ठा के साथ, तन्मय होकर अपने इष्ट के समीप बैठना, उसकी भावना, ध्यान और चिन्तन करना- यही है पर्युपासना या पर्युषणा। किन्तु इष्ट है कौन जिसके समीप बैठना चाहिये? वह इष्ट है आत्मा। आत्मा का, आत्मा में, आत्मा से ध्यान करना, आत्मा के पास बैठना यही पर्युषणा है। आत्मा का लक्षण है ज्ञान-दर्शन-चारित्र। ज्ञान की उपासना, आत्मा की उपासना, ज्ञानी की सेवा आत्मा की सेवा, ज्ञान का प्रचार आत्मा की प्रभावना। दर्शन अर्थात् अपनी शक्तियों, अपनी शुद्धता-पवित्रता में विश्वास। चारित्र समस्त कर्मों से, कषायों से, विभावों से खाली हो जाने के अलावा कुछ नहीं है- चायरित्करणं चारित्तं। 'पर्युशमना' शब्द का अर्थ है- क्रोध, मान, दम्भ, राग, द्वेष रूपी कषयाग्नि को शील, सदाचार, विनम्रता, करुणा, क्षमा तथा प्रेम की वर्षा से शान्त करना, उनका शमन करना।

अतः पर्युषण आत्मशुद्धि का, आत्म-शोधन का, आत्मचिन्तन का पर्व है। इस पर्व में आत्मा के चारों तरफ लिपटे कर्मों को हटाने का पुरुषार्थ किया जाता है। चातुर्मास के चार महीनों में साधु-साध्वी या साधक द्रव्य से एक स्थान पर वास करते हैं किन्तु भाव से अपनी आत्मा में वास करते हैं।

पर्युषण के इन दो प्रमुख अर्थों को समझकर यदि हम चातुर्मास के इन चार महीनों में करणीय चार कार्यों - (१) पौषध-व्रत, (२) ब्रह्मचर्य का पालन, (३) आरम्भ-समारम्भ का त्याग एवं (४) विशेष तप को करते हुये धर्मारधना करें तो अवश्य ही हम अपना जीवन सफल बना सकते हैं।

'श्रमण' के इस अंक में वर्षावास और तप, श्रावक-प्रतिमाओं पर आधारित कुछ लेख प्रकाशित कर रहे हैं साथ ही 'कहायणकोस' के कर्ता जिनेश्वरसूरि के शिष्य साधु धनेश्वरसूरि द्वारा विरचित 'सुरसंदरीचरिअं' के ग्यारहवें परिच्छेद को मूल, उसकी संस्कृत छाया; गुजराती तथा हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित कर रहे हैं। सभी परिच्छेदों की संस्कृत छाया तथा गुजराती अनुवाद प.पू. आचार्यप्रवर श्री राजयशसूरीश्वरजी के शिष्य प.पू. गणिवर्य उपाध्याय श्री विश्रुतयश विजयजी म.सा. ने किया है तथा हिन्दी अनुवाद एवं अंग्रेजी में परिचय लेखन स्वयं सम्पादक ने किया है। आशा है पाठकगणों को 'श्रमण' का यह अंक रुचिकर लगेगा।

Contents

१. **श्रावक केश लोचः आगमेतर सोच** 1-15
आगमज्ञानरत्नाकर श्री जयमुनि जी
२. **जैन परम्परा में श्रावक प्रतिमा की अवधारणा** 16-22
डॉ० कुमार शिवशंकर
३. **जैन परम्परा में वर्षायोग का महत्त्व** 23-29
आशीष कुमार जैन
४. **वाराणसी की नैगमेष मृण प्रतिमाएं : एक अध्ययन** 30-41
डॉ० श्रुति मिश्रा
5. **Reconsidering the Date of the Nirvāṇa of
Lord Mahāvīra** 43-58
Prof. Sagarmal Jain
- पार्श्वनाथ विद्यापीठ समाचार 59-62
- जैन जगत् 63
- साहित्य सत्कार 64-65
- सुरसुंदरीचरित्रं (ग्यारहवां परिच्छेद)

Our Contributors

१. **आगमज्ञानरत्नाकर श्री जयमुनि जी**
एस. एस. जैन सभा, गन्नौर, सोनीपत
२. **डॉ० कुमार शिवशंकर**
अध्यक्ष, प्राकृत विभाग, महाराणा प्रताप कॉलेज, मोहनियाँ, कैमूर (बिहार)
३. **आशीष कुमार जैन**
शोध-अध्येता, जैन-बौद्ध दर्शन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
४. **डॉ० श्रुति मिश्रा**
पूर्व शोध-छात्रा, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
5. **Prof. Sagarmal Jain**
Founder Director
Prachya Vidyapeeth, Shajapur (M.P.)

श्रावक केश लोच : आगमेतर सोच

श्री जयमुनि जी

धर्म का उद्गम विवादों के शमनार्थ हुआ किन्तु धीरे-धीरे धर्म ही विवादास्पद हो चला। जैन धर्म ने अनेकान्तवाद के माध्यम से धार्मिक विवादों का निपटारा करना चाहा लेकिन जैन धर्म में विविध विवाद प्रकट हो गये।

माना यह जाता है कि विवाद का मुद्दा जर, जोरू और जमीन होते हैं, परन्तु धार्मिक विवाद इनसे उत्पन्न होने के बजाय मान्यताओं की भूमिका से उपजते हैं। मैं श्रेष्ठ, मैं सही, मैं प्राचीन, मैं मौलिक ये अहं सत्यता, अहं मन्यता धर्मक्रियाओं में विवाद की जननी रही है। भोग से संघर्ष की उत्पत्ति सहज समझ में आती है पर त्याग उससे भी ज्यादा विवादों को जन्म देता है।

इस बात पर भी गौर करना जरूरी है कि गृहस्थ को यदि अधिक कमाई का गर्व हो सकता है तो संन्यासी को अधिक त्याग तपस्या का गर्व हो सकता है। भगवान महावीर ने कर्मबन्धन के कारणों को कर्म निर्जरा का तो कर्म निर्जरा के कारणों को कर्म बन्धन का कारण बताकर इस गहन सत्य को सार्वजनिक किया है। उत्कृष्ट त्याग के लिए विख्यात जैन समाज में समय-समय पर विवादास्पद मुद्दे उभरते रहे हैं।

कुछ वर्षों से जैन समाज में “श्रावकों का लोच” ऐसा ही विषय उभर कर सामने आया है, जो विचारणा की मांग कर रहा है।

केशलोच कायक्लेश तप के अन्तर्गत आता है। तप के लिए भगवान महावीर ने बड़ी सावधानियां दी हैं। पहली सावधानी तो यह कि जो साधक सम्यक् ज्ञान दर्शन का धारक होकर चरित्र का आराधक बन जाए, वही तप के क्षेत्र में प्रवेश करे। जिसने प्रथम तीन मोक्ष मार्गों (सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र) का अवलम्बन नहीं लिया, वह कठोर से कठोर तपस्या भी कर ले तो अज्ञान कष्ट या बालतपस्या का अधिकारी ही कहलाएगा, सकाम निर्जरा का नहीं।

उत्तराध्ययन सूत्र २८वें अध्ययन में-

“नाणं च दंसणं चैव चरित्तं च तवो तथा।

ऐस मग्गो त्ति पण्णत्तो जिणोहिं वरदंसिहिं।।”

2 : श्रमण, वर्ष 67, अंक 2, अप्रैल-जून, 2016

कहकर मोक्षमार्ग प्रतिपादन में तप का चौथा स्थान रखा है। जो आत्मा पहली तीन शर्तों को पूरा कर ले उसके पश्चात् ही तप की ओर कदम बढ़ाए, ऐसा भाव इस गाथा से निकलता है।

तत्त्वार्थ सूत्र² में तो मोक्षमार्ग के तीन ही स्तम्भ स्थापित किए हैं- “सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्राणिमोक्षमार्गः” तप की अविषय स्पष्ट रूप से तप के विषय में मूल जैन धारणा को अभिव्यक्त कर रही है।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र की पुष्टि, शुद्धि एवं परिपक्वता के लिए तप का आसेवन होता है। इन तीनों में भी चारित्र की दृढ़ता बढ़ाने के लिए तप किया जाता है। यदि किसी आत्मा ने चारित्र ग्रहण ही नहीं किया तो तप किस उद्देश्य की पूर्ति करेगा?

पतीली को अग्नि पर रखने का लाभ तभी है यदि पतीली में पानी हो, पानी में दाल हो, ताकि अग्नि की उष्णता पतीली को गर्म करके पानी को उबाल दे और उबला हुआ पानी दाल की कठोरता को मुलायम कर दे। बिना पानी और दाल के पतीली को आग पर रखना जैसे अज्ञता, अनर्थदण्ड माना जाता है वैसे ही चारित्र पर्यायों के अभाव में तप की अग्नि पर शरीर को तपाना भी एक तरह से बालिशता और मूढ़ता में परिगणित हो सकता है।

कथा साहित्य में प्रभु पार्श्वनाथ ने कमठ की बालतपस्या का इसीलिए विरोध किया था। भगवती सूत्र में गोशालक के प्रसंग में, वेश्यायन तपस्वी को ‘बालतपस्वी’ का विशेषण इसी कारण दिया, क्योंकि तप की पूर्वभूमिका ज्ञान-दर्शन-चारित्र का उसके पास अभाव था।

उत्तराध्ययन सूत्र³ के तीसवें अध्ययन तपोमार्ग की प्रारम्भिक ६ गाथाएं आंख खोलने वाली हैं। तप का विवेचन, पालन, अभ्यास करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को पहले उनपर दृष्टिपात करना चाहिए।

सर्वप्रथम कहा है कि साधक को पहले आस्रव निरोध करना है फिर तपस्या करनी है। आस्रव द्वार बन्द किए बिना तपस्या का वही परिणाम होता है जो पानी के खोत रोके बिना तलाब सुखाने का। एक तरफ कड़ी मेहनत से पानी उलीचा जा रहा है, सुखाया जा रहा है, दूसरी ओर से चुपचाप पानी भरता जा रहा है। पुराने युग से धार्मिक व्यक्ति ऐसी भूलें करते आ रहे थे, अतः भगवान महावीर ने चेताया कि तप की ओर कदम बढ़ाने से पूर्व आवश्यक शर्तें पूरी करनी चाहिए। आस्रव रहित आत्मा तप करे तो लाभदायक अन्यथा सश्रम कारावास।

आस्रव रहित कैसे हुआ जाता है इसका स्पष्टीकरण प्राणिवध, असत्यभाषण, अदत्तादान, मैथुन तथा परिग्रह से रहित होकर जो जीव रात्रिभोजन का त्याग कर देता है वह आस्रवों को रोकता है तथा ५ समिति तथा ३ गुप्ति का पालने करने वाला, कषायों को वशीभूत करने वाला, इन्द्रियों को जीतने वाला, तीन प्रकार के गौरवों से मुक्त तथा तीन शल्यों को त्यागने वाला साधक आस्रव रहित हो पाता है। इस सहज संयम की दृढ़ नींव को स्थापित करने के बाद तपस्या से प्राचीन कर्मों का सफाया होता है। जो संयमी पाप कर्मों के आगमन को रोकता है वह ही तप द्वारा कर्मनिर्जरा करता है। यह जिन शासन का सर्वोच्च उद्घोष है।

इस विशद सिद्धान्त की उपेक्षा का परिणाम यह निकलता है कि अयोग्य आत्माएं भी तप के क्षेत्र में प्रविष्ट हो जाती हैं। वे स्वयं मुग्ध होकर कल्पना करती रहती हैं कि हमारे कर्म नष्ट होते जा रहे हैं तथा उनके तप को देखकर अन्य व्यक्ति भी भाव-विभोर होकर उनकी स्तुति एवं प्रशंसा करके उन्हें तप के लिए उत्साहित करते रहते हैं। चार तीर्थों में श्रावक और श्राविका तप किस सीमा तक करें-यह एक उलझा हुआ प्रश्न है। पर आगमों का संतुलित चिन्तन किया जाए तो उसका भी समाधान मिल सकता है।

I. सर्वप्रथम; आगम में तपस्या करने का आदेश न साधु-साध्वी के लिए है न श्रावक-श्राविका के लिए। हां, तपस्या करने वाले साधु-साध्वियों का चित्रण पर्याप्त मात्रा में है, तथा श्रावक-श्राविकाओं की जीवनचर्या के वर्णन में तपस्या के कुछ संकेत मिलते हैं।

II. संयम के अनुपात में ही तप का अनुष्ठान आगमकारों को अभीष्ट रहा है। उदाहरणार्थ- साधु-साध्वी उत्कृष्ट तपस्या ६ महीने की करते हैं तो श्रावक तेला तप। अर्थात् साधु की तुलना में गृहस्थ का तप ६० वां अंश है। तेला तप भी उस गृहस्थ के लिए जो १२ व्रती हो तथा तेला भी उस स्थिति में जब वह असंयम की प्रवृत्तियों से मुक्त हो अर्थात् प्रौषध की अवस्था में हो।

III. जितने अंश में साधु का संयम होता है, उतने अंश में वह तपस्या करता है तथा जितने अंश में गृहस्थ का संयम (संयमासंयम) होता है उसके अनुपात में उसका तप, उससे अधिक नहीं।

IV. रात्रिभोजन त्याग के सम्बन्ध में श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण की धारणा है कि यह श्रावक के व्रतों का अंग न होकर उसके लिए तपस्या है। अर्थात् श्रावक के स्तर पर रात्रिभोजन त्याग भी पर्याप्त तपस्या है क्योंकि रात्रि में विचरण, यात्रा, आवागमन उसके लिए वर्जित नहीं है। अंधकार में भोजन करने से जितनी हिंसा संभव है उससे

कई गुणा हिंसा आवागमन में संभावित है। अतः रात्रि भोजन छोड़ना उसके लिए एक तपस्या है, व्रतों का अंग नहीं।

तपस्या के सम्बन्ध में इतनी स्पष्टता आगमों में उपलब्ध होने के बावजूद जैन इतिहास में ऐसा समय आया कि रात्रि-भोजन त्याग प्रत्येक जैन के लिए अनिवार्य हो गया। इस छोटे से नियम ने अन्य सभी श्रावकोचित व्रतों से ऊपर अपना स्थान बना लिया। किसी व्यक्ति का समग्र जीवन अहिंसा-सत्य, ईमानदारी, सदाचार आदि से भरपूर होने पर भी यदि वह रात्रिभोजन करता है तो उसे जैन मानना अपराध हो गया तथा सभी उच्च गुणों से वर्जित, झूठ-बेईमानी से ओत-प्रोत व्यक्ति भी रात्रि भोजन का त्यागी है तो वह विशुद्ध जैन श्रावक के रूप में सम्मानित होने लगा। धर्म का सस्तापन इसी को कहा जाएगा जब अल्प मूल्य की चीजें सिर पर चढ़ जाएं और बहुमूल्य पाताल में चली जाएं। समुद्र के सम्बन्ध में एक अन्योक्ति है कि वह तिनकों और झागों को सबसे ऊपर रखता है तथा मोतियों को नीचे फेंक देता है। ऐसा हास जैन धर्म में प्रारम्भ हुआ और क्रमशः बढ़ता ही गया। जैन साधु-साध्वियों ने इस परम्परा को वेग देते हुए न जाने क्यों, कहीं-कहीं से उठाकर सिद्धान्त प्रस्तुत कर दिए कि “रात्रि में भोजन करना मांस खाना है तथा पानी पीना रक्त पीना है।” ये उद्घोषणाएं आज भी थमी नहीं हैं। आगमोक्त न होते हुए भी श्रावक के लिए रात्रिभोजन त्याग एक पहचान बन गई। लिखने का अभिप्राय यह नहीं है कि गृहस्थ रात्रिभोजन करे या रात्रिभोजन छोड़ने में कोई दोष है। अभिप्राय यह है कि इस सम्बन्ध में (Extereme) अति भाषा से बचा जाए तथा इस नियम का जितना महत्त्व है, बस, उतना ही दिया जाए, अधिक नहीं।

साधु वर्ग की प्रेरणा तथा श्रावकों के उत्साह ने धीरे-धीरे तप को और अधिक अहमियत दे दी। गृहस्थ वर्ग तप से बढ़कर अठाई, मासखमण तक की तपस्याएं करने लगे। चम्पाबाई ने ६ महीने तक की तपस्या की। उसकी तपस्या के जुलूस के दौरान बादशाह अकबर के प्रभावित होने का आख्यायन भी जैन कथानकों में मिलता है। पुनः प्रश्न उभरता है कि ६ माह की तपस्या संयम के बिना कितनी कर्मनिर्जरा-कारक बनती है? तथा कितनी आगम सम्मत है? लम्बी-लम्बी तपस्याएँ करने और करवाने का यह सिलसिला आज तक निर्बाध चला आ रहा है। श्वेताम्बर परम्परा में अधिक दिगम्बर परम्परा में कम। वर्षीतप, बेले-तेले की सालों-सालों तपस्याएँ भी श्रावक जीवन का अंग बन गईं।

समग्र जीवन शैली से इन सभी तपस्याओं का तालमेल छूट गया। एक अनुपात और सौन्दर्य भंग होने लगा। ‘समचतुरस्र संस्थान की बजाय गृहस्थों का जीवन वामन, कुब्जक, हुण्ड बनने लगा। शरीर का एक अंग खूबसूरत हो और शेष सभी ऊबड़

खाबड़ हों तो एक अंग सौन्दर्यवर्धक नहीं कहला सकता। अंगों का समानुपात में विकास हो, तभी सुन्दरता बनेगी। जैन श्रावक शैली ने अपना सौन्दर्य खोना शुरू किया तो खोता ही चला गया। फिर तो सचित्त जल, सचित्त वनस्पति के पीने-खाने का प्रत्याख्यान श्रावकों ने करना प्रारम्भ कर दिया तथा साधुओं ने करवाना। अपने भावों को स्पष्ट करते हुए दोहरा देना जरूरी है कि ये त्याग बुरे नहीं हैं, इनका निर्वाह करने वाले महान होंगे, पर इनका समग्र जीवन से कितना सामंजस्य है तथा इनकी अध्यात्म मार्ग पर कितनी मूल्यवत्ता है तथा क्या साधु जीवन की नियमावली श्रावकों के लिए अनुमत है?

एक व्यक्ति दिन में पीने में ४-५ किलो पानी तो अचित्त पी लेता है पर स्नान में, वस्त्र धोने-धुलवाने में, मकान, वाहनों की सफाई में, खेत की सिंचाई में, टॉयलेट नाली के धोने में जो सचित्त जल प्रयुक्त होता है, उस हिंसा से कैसे बचा जा सकता है? यही बात फल के सम्बन्ध में है। सचित्त जल या सचित्त वनस्पति को अचित्त बनाने में क्या हिंसा रुक गई? क्या अन्य जीवों की हिंसा और नहीं बढ़ गई? समझना यह है कि ये नियम श्रावक के व्रतों की सीमा में हैं ही नहीं, यदि कोई करेगा तो प्रकारान्तर से उनका भंग भी होगा। जिस उद्देश्य से ये नियम गृहीत हुए हैं वह उद्देश्य तो कभी पूरा होगा ही नहीं।

श्रावक के सभी व्रत-नियम स्थूल स्तर के हैं जबकि यह सभी नियम प्रत्याख्यान सूक्ष्मता की सीमा में हैं। चलो, इन सब नियमों से कर्म निर्जरा होती है यह मानकर इनको प्रोत्साहित कर दें लेकिन कर्मबन्ध और निर्जरा की प्रक्रिया इतनी गहरी और सूक्ष्म है कि इधर स्वल्प प्रत्याख्यानों से अल्प कर्म का बंध रुका उधर स्वल्प से कषायोदय से उससे अधिक बन्ध हो गया। समय-समय पर क्रोध, अहं, छल और इच्छाओं, अपेक्षाओं का झंझावात मानव जीवन में उठता रहता है जो त्याग-प्रत्याख्यान जन्य लाभ को क्षणभर में ध्वस्त कर देता है। इतना अधिक जोर लगाकर भी आत्मा का स्वरूप नहीं निखरा तो इन त्याग प्रत्याख्यानों पर पुनर्विचार नहीं करना चाहिए क्या?

पूर्वोक्त साधूचित्त मर्यादाओं का श्रावक जीवन में प्रवेश लम्बे असें से होता रहा है, अतः उन पर अधिक टिप्पणी करना शायद उचित न भी हो पर एक प्रवृत्ति जो चन्द वर्षों से जैन समाज में प्रारम्भ की जा रही है उस पर तो प्रबुद्ध एवं जाग्रत वर्ग को ध्यान देना ही चाहिए। कुछ साधुओं की प्रेरणा बनने लगी है कि श्रावकों को लोच करवाना चाहिए और प्रेरणा का तरीका, श्रद्धालुओं की भावुकता का परिणाम है कि श्रावक भी पर्याप्त संख्या में लोच करवाने लगे हैं। चातुर्मास की उपलब्धियों में श्रावकों के लोचों की संख्या भी एक महत्त्वपूर्ण इकाई बन गई है। जैसे- अठाई,

6 : श्रमण, वर्ष 67, अंक 2, अप्रैल-जून, 2016

मासखमण, दर्शनार्थियों की भीड़, सम्वत्सरी के पौषध, दयाएं आदि परिगणनीय उपलब्धियां होती थीं वैसे ही अब लोच सर्वोच्च उपलब्धि बनता जा रहा है। चारमाह के दौरान अहं भाव की प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या, मनमुटाव, कलह, द्वेष, द्वन्द्व कितनी मात्रा में न्यून हुए इन सबकी ओर न मुनिवर्ग का ध्यान है, न ही श्रावकों का। मानों सारा जैनत्व और आध्यात्मिक विकास बाह्य तप द्वारा ही संपन्न होता हो।

यह भी एक विडम्बना है कि जैन धर्म में जितनी भाव प्रधानता थी, उसका संपूर्ण स्थान द्रव्य आराधनाओं ने ले लिया है। लोच की शुरुआत भी उस एकांगी प्रवृत्ति के परिणाम स्वरूप ही हुई है। अब तो प्रतीत हो रहा है कि जैन श्रावकों में केवल एक आखिरी कठोर साधना का प्रवेश और बाकी है, वह प्रविष्ट हुआ और श्रावक वर्ग “उत्कृष्ट निर्जरा” का भागीदार बना। नग्नत्व का अंतिम वैरियर कब टूटेगा या तोड़ने का अभियान कब चलाया जाएगा? उत्तर चाहिए - निर्जरा के रहस्यवादियों से।

कायक्लेश तप के अन्तर्गत ‘लोच’ आता है जो केवल जैन मुनियों की उत्कृष्ट परीक्षा के रूप में भगवन्तों ने आवश्यक रूप से विहित किया था। भारत में कष्ट सहिष्णुता और कष्ट निमंत्रण के बीच का अन्तर बहुत कम धर्मप्रवर्तकों ने समझा था। दोनों को एक मानकर अनेक धर्म सम्प्रदायों में कष्ट निमन्त्रण की परम्पराएं प्रारम्भ हो गईं। कहीं कांटों पर चलना साधना का अंग हो गया, कहीं कान फाड़ना संन्यास की शर्त बन गई, कहीं बर्फ के नीचे पसीना लाना आवश्यक हो गया, कहीं-कहीं भस्मालेपन से आगे विष्टालेपन और विष्टाभक्षण भी योगियों की परीक्षा में शुमार कर दिया गया। इन सब अतिवादी कठोरताओं के बीच बड़ा शालीन सा मार्ग प्रभु महावीर ने दिया कि जैन मुनि अपने बालों का लोच कर ले या करवा ले। यह उसकी दैहिक तपस्या अंतिम परीक्षा होगी। इससे अधिक शरीर कष्ट जैन मुनि के लिए वर्जित कर दिया। कोई कष्ट स्वयं आए, उसे सहना अच्छा है पर स्वयं कष्टों की ओर बढ़ना यह जैन धर्म में अधिक मान्य नहीं है। जिनकल्प के अन्तर्गत मुनि का जीवन काफी कठोरताओं का अभ्यासी हो जाता है पर उसमें भी कष्टों को स्वतः ओढ़ने का प्रावधान नहीं है। आने वाले कष्टों से बचकर चलने का तो निषेध है, पर कष्ट बुलाने का प्रयास नहीं है। जैसे कि रास्ते में कांटे हों तो बचकर चलना चाहिए पर जिस रास्ते में कांटे न हों उस पर पहले कांटे डालना, फिर चलना यह भी विधान नहीं है। सामने से हिंसक पशु आए तो डरकर इधर-उधर नहीं होना, यह ठीक पर जहां हिंसक पशु रहते हों वहां जानबूझ कर जाना, यह गलत है। यह सूक्ष्म विवेक जैन शासन में रहा था और जैसे-जैसे साधकों की प्रज्ञा की लौ मन्द पड़ती दिखी, विवेक स्तर भावुकता और जड़ता

की ओर उन्मुख हुआ, वैसे-वैसे आगमकारों ने 'जिनकल्प' पर भी पाबन्दी लगा दी क्योंकि स्वतः आने वाले तथा बुलाए जाने वाले कष्टों के बीच की सूक्ष्म भेदरेखा धूमिलतर होने लगी थी। स्थविरकल्प में भी कुछ व्यवस्थाएं निर्धारित कर दी गईं ताकि अनावश्यक दुःसाहस की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति रुके।

स्थविरकल्पी मुनियों को अनार्य देश में भ्रमण का निषेध हो गया ताकि बेवजह तकलीफों से बचाव हो सके। साध्वियों के लिए और काफी सावधानियां दी गईं। उन्हें सुरक्षित स्थानों पर दो-दो महीने रहने का संकेत किया गया। वस्तुतः जैन धर्म जितनी कठोर चर्या के लिए विख्यात है, उससे ज्यादा विवेक के लिए है। विवेक का अर्थ है कि कोई चर्या किसी काल, व्यक्ति, वर्ग के लिए उपयोगी हो तो उसका संपादन किया जाए और कालान्तर, मानवान्तर या वर्गान्तर के लिए वह उपयोगी न हो तो उसका परिहार किया जाए। मनोविज्ञान ने इस विवेक को स्वीकार किया है। प्रतिकूल परिस्थितियों में धैर्य रखना वीरता है। गर्मी, सर्दी, प्रहार, आक्रमण का सामना करना सहिष्णुता है पर स्वयं कष्टों की तलाश करना, अपने शरीर पर चोट पहुंचाना, उसमें आनन्द लेना मानसिक रुग्णता है। मनोविज्ञान के अनुसार आत्महत्या की ओर अग्रसर व्यक्ति जैसे भीषण रोग का शिकार है उसी प्रकार आत्मपीड़ा की ओर बढ़ने वाला भी कुछ-कुछ रोगी है। परकीयवध और परकीयपीड़ा की तरह स्ववध और स्वपीड़ा भी वर्जनीय है, उनके अनुसार।

जैन विचारधारा उनसे शत-प्रतिशत तो सहमत नहीं है क्योंकि जैन धर्म में जैन मुनियों के कुछ नियम उनके द्वारा स्वीकारणीय नहीं हो सकते। पर उनकी कुछ प्रतिपत्तियों के साथ जैन धर्म भी अपनी स्वीकृति रखता है। शरीर का आत्यन्तिक पोषण या आत्यन्तिक शोषण जिन शासन के विवेक धर्म में अनुमत नहीं रहा। 'शरीर माहु नाविति' शरीर एक नौका है। नौका का उपयोग तो करना है पर उसको सीमातीत लाड़ करते हुए पानी से बचाना नहीं है, न ही उसे तोड़कर ही दम लेना है। शरीर का उपयोग साधक अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार करते हैं, साधु अपने ढंग से तथा श्रावक अपने ढंग से। केश लोच को भी जैन शासन की इस विवेक प्रज्ञा के आलोक में आचार्यों ने समझा और अपनाया है। भगवान महावीर के चारों सम्प्रदायों में साधु-साध्वी केश लोच की परम्परा को अभी तक सुरक्षित रूप से अपनाते आए हैं, चाहे सुविधावाद और आधुनिकता के कितने ही प्रतीक प्रविष्ट हो गए हों, कुछ प्राचीन परम्पराएं लुप्त हो गई हों पर लोच अभी तक शेष है। साथ ही, हजारों सालों से श्रावक-श्राविकाओं में लोच का प्रचलन नहीं हुआ। क्योंकि लोच के लिए जो-जो पूर्व नियम पालनीय होते हैं, जो कि शास्त्रों में अभी तक उपलब्ध हैं, वे जब तक

पूर्ण नहीं हो जाएं तब तक लोच की अनुमति नहीं है। किसी अयोग्य व्यक्ति के साथ जुड़कर लोच शोचनीय बन सकता है। साधु-साध्वी के लिए लोच अवश्य करणीय है, पर श्रावक के लिए 'श्रमणभूत प्रतिमा' ग्यारहवीं प्रतिमा के पालन के समय ही अनुमत है, उससे पूर्व नहीं। उस समय भी वैकल्पिक रूप से ही प्रावधान है, अनिवार्य विधान नहीं। ग्यारहवीं प्रतिमा श्रावक साधना का अंतिम पड़ाव है। जो श्रावक पहले १० प्रतिमाओं का सम्यक् पालन कर चुका है वही ग्यारहवीं प्रतिमा का अधिकारी है। पूर्ववर्ती दस प्रतिमाओं को बिना निभाए ग्यारहवीं प्रतिमा के नियमों का पालन निषिद्ध है। प्रतिमाओं का प्रारम्भ करने से पहले बारह व्रतों का दीर्घावधि तक निष्ठापूर्वक निर्वाह करना भी आवश्यक है। जिस व्यक्ति ने बारह व्रत अंगीकार नहीं किए, उनका लम्बे समय तक पालन नहीं किया, वह प्रतिमाओं की ओर बढ़ने के लिए अनधिकृत है। चाहे प्रतिमाओं की कुछ बातें उसे लुभाती हों, वह उन्हें निभा भी सकता हो, पर उन्हें अपनाने का प्रयास तभी मान्य होगा जब वह पूर्ववर्ती शर्तों को पूरा कर चुका हो अन्यथा अनधिकार चेष्टा कहलाएगी।

प्रतिमाओं की आराधना से पूर्व किस-किस शर्त को निभाना चाहिए, इसका सजीव उदाहरण उपासकदशांगसूत्र में आनन्द श्रावक के जीवन से प्राप्त होता है। तथाहि-जब आनन्द श्रावक १४ वर्षों तक अपने व्रतों को निभा चुका तो एक बार धर्मजागरण के दौरान एक विचार कौंधा कि वाणिज्य ग्राम के सामाजिक प्रपंचों एवं पारिवारिक झंझटों के कारण अधिक धर्माराधना नहीं कर पाता। अब मैं अपने बड़े पुत्र को दायित्व सौंपकर पौषधशाला में रहूँ और धर्माराधना में जीवन गुजाराँ।" इस विचार को उसने शीघ्र ही मूर्त्त रूप दिया। पौषधशाला में आकर उसने पहली उपासक प्रतिमा का निर्वहण किया। पहली के बाद दूसरी, तीसरी और क्रमशः ग्यारहवीं प्रतिमा तक उसने अपने चरण बढ़ाए। पहली तीन प्रतिमाएं तो पूर्वगृहीत सम्यक्त्व, अणुव्रत तथा शिक्षा व्रतों को नए सिरे से, शुद्धि और दृढ़ता पूर्वक अपनाना है। यद्यपि पहली प्रतिमा का कालमान एक महीना, दूसरी का दो महीने और तीसरी प्रतिमा का तीन महीने माना है, पर यह परम्परा प्राप्त धारणा है। मूल में आगमकारों ने इन तीन का समय निर्धारित नहीं किया। दशाश्रुतस्कन्ध की छठी दशा के अध्ययन से यह बात स्पष्ट रूप से ज्ञात होती है। जल्दबाजी में कोई साधक सम्यक्त्व, अणुव्रत, शिक्षाव्रतादि की उपेक्षा करके अगले कठोर नियमों के लिए तत्पर न हो जाए, इसलिए इन तीनों की परिपक्वता आवश्यक मानी गई है। अगली प्रतिमाओं में एक-एक महीने की कालावधि भी बढ़ती जाती है, साधना के नियम भी सख्त होते हैं। चार माह तक आनन्द ने अष्टमी पक्खी आदि पर्व तिथियों पर पौषध की विशिष्ट आराधना की। फिर पांच

महीने तक पूरी-पूरी रात खड़े होकर कायोत्सर्ग किया, उस दौरान जिनेन्द्र भगवन्तों का विशेष ध्यान किया। जिन दिनों कायोत्सर्ग नहीं किया जाता था उन दिनों स्नान और रात्रिभोजन का त्याग तो करना ही था। छठी प्रतिमा में ब्रह्मचर्य की विशिष्ट साधना छः महीने तक की। शरीर का शृंगार, एकान्त में वार्तालाप का त्याग भी इस प्रतिमा में किया जाता है। यदि किसी साधक का मन दृढ़ हो जाए तो जीवन पर्यन्त के लिए ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा भी ली जा सकती है। अगली सातवीं प्रतिमा में सचित्त आहार का वर्जन किया गया। आठवीं प्रतिमा के अन्तर्गत आठ माह तक स्वयं गृहस्थोचित आरम्भ-समारम्भ छोड़ दिए पर नौकर चाकर से करवाने बन्द नहीं किए। इतनी भूमिका तैयार होने के पश्चात् नौ महीने की नौवीं प्रतिमा में नौकरों से काम करवाना, अपने लिए किसी वस्तु को तैयार करवाना छोड़ दिया। दसवीं प्रतिमा दस महीने तक चलती है। इसकी आराधना करते हुए आनन्द ने नियमानुसार परिवार से आने वाले उस भोजन को लेना बन्द कर दिया जो भोजन परिवार ने उनके निमित्त से बनाया होता। घर से इतना मात्र संपर्क रखना होता है कि यदि कोई सदस्य यह कहता हो कि हमें ऐसा-ऐसा काम करना है, तो श्रावक उत्तर में इतना उत्तर देता है कि समझ गया या मेरी समझ में नहीं आता। शरीर के सम्बन्ध में उसकी मर्यादा यह है कि जरूरत पड़ने पर उस्तरे से सारे बालों का मुण्डन करवा ले और यदि लौकिक रस्म का पालन आवश्यक हो तो शिखा रख ले। ग्यारहवीं 'श्रमणभूत' प्रतिमा है-जिसका कालमान ग्यारह महीने का है। श्रावक की अधिकतर चर्या और मर्यादा श्रमण-मुनियों जैसी हो जाती है। साधु तो वह इसलिए नहीं है क्योंकि उसका परिवार से लगाव जुड़ाव है। वह उस घर का सदस्य है पर साधना का स्तर काफी कुछ साधुओं जैसा हो जाता है। वह साधुओं जैसा वेष अपना लेता है। जीवरक्षा के प्रति साधुओं के समान अतिरिक्त सावधानी रखता है। साधुओं की तरह उसके सामने दाल और चावल में एक पका हो तो एक ही लेता है दूसरा द्रव्य नहीं लेता। गृहस्थों के घर जाकर भिक्षा लाता है। इन सब नियमों को निभाने वाले श्रावक को लोच करने की छूट भगवन्तों ने दी है। वह चाहे तो लोच भी करवा सकता है, नहीं तो उस्तरे से मुण्डन करवा सकता है।

आनन्द श्रावक ने लोच करवाया या नहीं? यह वर्णन आगम में नहीं है पर संभावना की जा सकती है कि उसने लोच नहीं करवाया होगा। यह संभावना इस आधार पर उभरती है कि उस श्रावक की अनेकानेक क्रियाओं का वर्णन आगम में है, यदि लोच किया होता तो उसका उल्लेख हुए बिना नहीं रहता। जैसा कि हर साधु-साध्वी के दीक्षा प्रसंग पर लोच का उल्लेख अनिवार्य रूप से आगमकारों ने किया है- "पंच

मुहिलोयं करेइ”। बारह व्रतों का दीर्घकाल तक सुविशुद्ध पालन, ग्यारह प्रतिमाओं के क्रमशः यथागम निर्वहण के पश्चात् ही लोच की भूमिका बन सकती है। इतनी स्पष्टता के बावजूद आज के युग में कुछ सम्प्रदायों ने श्रावकों के लिए लोच की परम्परा डाली है। यह सरासर आगमेतर प्रथा का प्रचलन लगता है। जो श्रावक अंधाधुंध व्यापार में संलग्न हैं, जिन्हें ब्रह्मचर्य का नियम नहीं, बारह व्रत भी गृहीत नहीं हैं, नैतिकता के विरुद्ध अन्यायपूर्वक कमाई करते हैं, नियमित रूप से सामायिक संवर भी नहीं करते, वे यदि ग्यारहवीं प्रतिमा के पालनकर्ता के वैकल्पिक नियम ‘केशलोच’ को अपनाते हैं तो लगता है - राजाओं का मुकुट किसी दीन हीन दरिद्र के पैरों पर बांधा जा रहा है। जिन शासन के प्रतीक के साथ खिलवाड़ की जा रही है।

यह सत्य है कि लोच बहुत बड़ी साधना है, जो इसका सेवन करेगा वह आत्मकल्याण के मार्ग पर अग्रसर होगा। परन्तु क्या इस मुकाम पर पहुंचने से पहले जिन मोड़ों-मरहलों को पार करना आवश्यक होता है, उन्हें बिना छुए अकेला लोच कल्याणकारी हो सकता है?

अधुनातन साधु समाज में कुछ साधु-साध्वी महाराज एकांकी विचरते हैं और वे फरमाते हैं कि “एकांकी विचरना तो बहुत बड़ी साधना है।” साधु महाराज के तीन मनोरथों में से एक मनोरथ है। यह तो निर्भरता है सहाय प्रत्याख्यान है। परन्तु जो संघ आगमवादी हैं क्या उनके तर्कों से सहमत होंगे? क्या अपने संघ के मुनियों को, साध्वियों को प्रेरित करेंगे कि आगे बढ़ो, अकेले रहो, निःसंगता बढ़ेगी और अधिकाधिक कर्म-निर्जरा होगी। संघ के झंझटों से मुक्त हो जाओगे, नग्नत्व अपना लो, विशुद्ध चारित्राराधना के अधिकारी बनोगे और विशिष्ट निर्जरा कारक भी।

लेकिन नहीं, क्योंकि उन्हें ज्ञात है कि यह प्ररूपणा और प्रोत्साहन आगमेतर हो जाएगा। नग्नत्व का मण्डन आचारांग* में है, एकांकी विचरणा की प्रेरणा है। पर उस स्थिति पर जाने के लिए साधक को और शर्तें भी तो पूरी करनी होती हैं। पूर्वो का ज्ञान हो, भिक्षा काल सुनिश्चित हो, एक दो रात से अधिक कहीं निवास न हो, वृक्षों के नीचे या बागों में रहता हो, सोने के लिए सूखी घास भी न लेता हो, आग लग जाए तो अन्दर से बाहर, बाहर से अन्दर न जाने की प्रतिज्ञा रखता हो, कांटा, कंकर चुभने पर निकालने का प्रयास न हो, आंखों में पड़े तिनके को भी न निकालता हो जहाँ सूर्यास्त हो जाए, कितना ही भयानक स्थान हो वहाँ से एक कदम भी आगे पीछे नहीं जाता हो, हाथी, घोड़ा, बैल का खतरा देखकर रास्ता न बदलता हो, शरीर के आराम वास्ते धूप से छाया, छाया से धूप में न जाता हो इत्यादि अनेक शर्तें पूरी

किए बिना एकलविहार प्रतिमा अनुमत नहीं है। यह दृष्टिकोण आगम का दृष्टिकोण समझने वाले हर मुनि का, संघ एवं सम्प्रदाय का है।

इसलिए पंचम काल में जिनकल्प तथा एकलविहार प्रतिमा का निषेध सभी ने स्वीकार किया है तथा अकेले विचरने वाले साधु-साध्वी से अधिक सम्पर्क नहीं रखा जाता। प्रोत्साहन की बात ही अलग है।

एकल विहार प्रतिमा बहुत ऊँची साधना है मगर उसके लिए अन्यान्य योग्यताएं होंगी तभी तो वह ऊँची कहलाएगी। अन्यान्य योग्यताएं पूर्ण किए बिना जैसे एकांकी विचरण गलत है वैसे ही बारह व्रत के पर्याप्त पालन तथा ग्यारहवीं प्रतिमा तक पहुंचे बिना लोच करना श्रावक के लिए गलत होना चाहिए। साधु-साध्वी भी प्रोत्साहन दे तो आगम विरोध मानना चाहिए।

श्रावक वर्ग में त्यागरुचि जागृत हो, भोग प्रवृत्ति न्यून हो, यह प्रयास सर्वथा अनुमोदनीय है और इसी विचारधारा से श्रावक वर्ग में अचित्त भोजन, दिवा भोजन, शीलपालन विविध तपस्याएं चलीं और चलने दी गयीं। यद्यपि इन सबके लिए आगमों में कोई विधान नहीं पर युग प्रवाह के साथ ये प्रारम्भ हुए तो चल ही रहे हैं। इनको बरकरार रखा जाए मगर लोच जैसी कठोर चर्या गृहस्थों तक पहुंचाकर इसकी गरिमा का हास न किया जाए।

एक ओर सरकारी तन्त्र में जैन मुनियों की लोच पद्धति को लेकर दुष्प्रचार किया जा रहा है कि ये छोटे-छोटे बाल मुनियों और साध्वियों के केश फाड़कर अत्याचार कर रहे हैं, दूसरी ओर कुछ अत्युत्साही जैन मुनि वर्ग की निजी व्यवस्था को सार्वजनिक बनाने पर तुले हुए हैं। जैन धर्म की मूल दृष्टि को यदि अजैन विचारक समझ नहीं पा रहे तो लगता है शायद जैन भी समझने से काफी दूर हैं। मुनि चर्या से जुड़े पहलू जैसे-जैसे श्रावकों के द्वारा अपनाए जाने लगे हैं, वैसे-वैसे उनकी गुणवत्ता, गंभीरता, उपयोगिता और प्रासंगिकता घटने लगी है। श्रावकों का लोच करना या करवाना 'जिन शासन' के समुज्ज्वल इतिहास की विकृति बन सकती है और भविष्य के लिए पैरों की जंजीर। आगमों में कोई तो उदाहरण हो जो इस नवीन उद्भावना को समर्थित कर दे।

आनन्द आदि दस श्रावकों के अलावा औपपातिक सूत्र⁴ में वर्णित अम्बड़ परिव्राजक जैसे त्यागी श्रावक ने भी लोच को अपनी चर्या का अंग नहीं बनाया। जरा उसकी चर्या का अवलोकन करें और अधुनातन श्रावकों के जीवन की तुलना करें जो भावुकता वश लोच को सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि मान रहे हैं।

12 : श्रमण, वर्ष 67, अंक 2, अप्रैल-जून, 2016

अम्बड़ तथा उसके ७०० शिष्य भगवान महावीर के प्रति अगाध श्रद्धा रखते थे, उन्हें ही अपना आराध्य और आदर्श मानते थे।

I. उन्हें तालाब, बावड़ी, नदी आदि में प्रवेश करके स्नान करने का त्याग था पर लोच वे भी नहीं करते-करवाते थे। वर्तमान युग में लोच करवाने वालों को क्या इतना त्याग है?

II. वे किसी गाड़ी, छकड़ा, पालकी आदि की सवारी नहीं करते थे, वाहन त्यागी थे पर लोच तक वे भी नहीं पहुंचे। वर्तमान काल में लोच करवाने वाले श्रावक वाहन का प्रयोग करते हैं, छोड़ा नहीं है।

III. वे ऊंट, घोड़ा, हाथी, बैल, भैंस आदि पर नहीं बैठने का नियम रखते थे, फिर भी लोच उनका जीवनांग नहीं था, आजकल के श्रावकों के साथ ऐसा नहीं है।

IV. वे नाटक, खेल, तमाशा, ड्रामा आदि नहीं देखते थे। इतनी कठोर साधना के बावजूद लोच तक नहीं गए क्योंकि लोच श्रावक के लिए विहित नहीं है। आज की स्थिति पर भी ध्यान दें।

V. हरियाली उखाड़ना, मसलना, इकट्ठा करना उनके लिए निषिद्ध था पर लोच से वे दूर रहे। आज जिनको हरियाली काटने छूने का त्याग नहीं है वे लोच करवा रहे हैं।

VI. लोहे, ताम्बे, चांदी, स्वर्ण आदि के बहुमूल्य पात्र उनके लिए वर्जित थे, केवल तुम्बी, लकड़ी और मिट्टी के बर्तनों से जीवन यापन करने वाले वे परिव्राजक गृहत्यागी होकर भी लोच नहीं करवाते थे और आज गृहस्थों ने अनुमति ले ली।

VII. उनके वस्त्र गैरिक धातु के अलावा और किसी रंगवाले नहीं हो सकते थे, लेकिन पूर्ण जैन मुनि या श्रमणभूत बने बिना लोच न होने से वे लोच नहीं करवाते थे पर आज लोच करने वाले श्रावकों को काफी छूट मिल रही है।

VIII. एक ताम्बे के यज्ञोपवीत के अलावा किसी प्रकार का आभूषण हार, कड़ा, कुण्डल, मुकुट उन्हें पूरी तरह निषिद्ध था, ऐसी संन्यास साधना के पालक परिव्राजक भी लोच को अनिवार्य नहीं मानते थे। लेकिन इस युग के लोच प्रिय श्रावकों को क्या ये नियम हैं?

IX. उन्हें फूल, माला आदि का लगभग नियम था। अगरू, चन्दन, केसर आदि सुगन्धित लेप लगाने का प्रत्याख्यान भी था क्योंकि संन्यास में ये चीजें नहीं चलतीं पर केशों का लोच नहीं करवाया। मौजूदा केश लोच करवाने वाले उपरोक्त नियम के धारक बने बिना उनसे आगे बढ़ गए।

X. वे पानी भी बिना आज्ञा पीते नहीं थे। जैन मुनि की तरह उसे अदत्तादान मानते थे। इतनी कठोरता के कारण अम्बड़ परिव्राजक के शिष्यों ने अदत्त पानी पीने की बजाय संथारा कर लिया और पांचवें देवलोक में गये। क्या ये यदि लोच करवा लेते तो उनसे वह पीड़ा सहन नहीं होती? लेकिन नहीं, जैन भिक्षु के प्रतीक चिह्न को उन्होंने स्वयं अपनाकर अनादृत नहीं किया।

जिस व्यक्ति वर्ग या संस्कृति का जो अंग चिरकाल से बना हुआ हो वह उसे ही सजता और जंचता है। अन्य द्वारा अपनाये जाने पर न उस अंग की शोभा बचती है, न अपनाने वाले की छवि बनती है।

श्रावक लोच के समर्थक कह सकते हैं कि अपने शरीर पर होने वाली पीड़ा को सहन करना बड़ी बात है, अतः उस प्रक्रिया से गुजरने वाले श्रावकों को दाद मिलनी चाहिए तथा प्रेरणा देने वाले साधु-साध्वियों को समर्थन। परन्तु जैन धर्म को यथार्थ में समझने वाले व्यक्ति के सामने ऐसा कर पाना इसलिए कठिन होता है क्योंकि पीड़ा सहन मात्र ही जैनों का लक्ष्य नहीं है, न उसे धार्मिकता और आध्यात्मिकता का अभिन्न अंग माना। यदि पीड़ा सहना ही धर्म हो तो मुहर्म्म के अवसर पर हजारों लाखों मुस्लिम युवक अपने शरीर को चाकुओं से काट लेते हैं, जंजीरो से पीटते हैं, खून से लथपथ हो जाते हैं तथा बाद में दवाई नहीं लेते, मरहम पट्टी नहीं करवाते। दक्षिण भारत में कई मंदिरों की रथयात्रा के दौरान भक्तगण अपनी जीभ को बींध देते हैं। एक गाल से दूसरे गाल तक भाला चुभा देते हैं। ईसाई जगत् में कई स्थानों पर क्राइस्ट की स्मृति में छाती में कीलें गाड़ी जाती हैं, अलग-अलग धर्मों में अलग-अलग ढंग से पीड़ा सहने की क्रिधियाँ हैं, क्या वे सब प्रशंसनीय, अनुमोदनीय और महानिर्जरा कारक हैं?

यदि आज कुछ भाई केशलोच का कष्ट सहकर परम धार्मिकता की अनुभूति कर रहे हैं तो कल कोई अपने हाथ-पैरों के नाखूनों को उखाड़कर उत्कृष्ट धार्मिकता की नई पद्धति प्रारम्भ कर सकता है। मुनियों का लोच देखकर श्रावकों में स्वयं लोच करवाने की भावुकता उमड़ जाती है। फिर श्रावकों का लोच देखकर तो अन्य श्रावकों के भावुक होने की संभावना बढ़ती ही बढ़ती है।

देखा-देखी में, भावुकता में लोच करवाना उसी तरह वर्जनीय है जैसे दीक्षा लेना। भावना और भावुकता का स्वरूप एक नहीं होता। जैन धर्म भावना को मुख्यता देता है भावुकता को नहीं। जैसे कई व्यक्ति भावुकता वश एकदम दीक्षा लेने का आग्रह करने लगे तो साधु और श्रावक संघ उसे रोकता है, ऐसे ही भावुकता लोच

को भी रोका जाना आवश्यक है। हाँ, यदि किसी व्यक्ति के मन में दीक्षा का भाव है, वह साधना का मर्म जान चुका है, वैराग्य अभ्यास परिपक्व है, अन्यान्य अपेक्षाएं पूर्ण कर चुका है, पर लोच के कारण आंशकित है, वह यदि केश लोच करवाता है तो वाजिब हो सकता है परन्तु यह विवेक तो उसे भी रखना होगा कि केशलोच एकान्त में हो, सार्वजनिक रूप से नहीं। जैसे कि दिगम्बर परम्परा में दीक्षा के इच्छुक व्यक्ति एकान्त में नग्नत्व का अभ्यास करते हैं, सार्वजनिक नहीं। एक बार नग्नत्व सार्वजनिक हो जाए तो वह नग्नत्व सार्वकालिक मुनित्व में परिणित मान लिया जाता है, ऐसे ही श्वेताम्बर परम्परा में सार्वजनिक लोच होने के बाद साधुत्व का अंगीकार अवश्यभावी होना चाहिए। अप्रकट अवस्था में एक दो बार करवा लिया तो विरोध भी नहीं होना चाहिए।

विश्व के इतिहासकारों ने जैनों की आत्यन्तिक निवृत्ति प्रधान जीवन शैली पर भारी कटाक्ष किए हैं। उन्हें तो मुनियों का केशलोच भी अप्राकृतिक एवं अत्याचार सा प्रतीत होता है। उन्हें इसके पीछे निहित भाव और तर्कों से सहमत करना ही मुश्किल हो रहा है। ऐसे में गृहस्थों का केशलोच उन्हें समझ आ जाएगा, यह कल्पना से बाहर है। जनमानस में जिनशासन के प्रति बिलगाव या अरुचि का भाव इस या इस तरह की क्रियाओं से बढ़ने की संभावना है। यह जिन शासन की सेवा न होकर अशातना भी बन सकती है।

वस्तुतः तो साधुवर्ग अपनी व्यवस्था को चुस्त-दुरुस्त रखे, श्रावक वर्ग अपनी। एक दूसरे के क्षेत्र में प्रवेश करने से दुर्घटनाओं की संख्या बढ़ती है। अमेरिका, यूरोप में तीव्र, मध्यम और मन्द गति के वाहनों के लिए अलग-अलग सरणियां (Lanes) होती हैं, कोई भी वाहन अपनी सरणि छोड़कर दूसरी सरणि में नहीं घुसता। अतएव वहां दुर्घटनाएं न के बराबर होती हैं। भारत में सरणियां तो बनती जा रही हैं पर दूसरी सरणि में घुसने की मानसिकता नहीं छूट रही, इसलिए दुर्घटनाएं हैं। भगवान महावीर ने भी साधु और श्रावक की दो सरणियां बनाई थी। दोनों के पृथक्-पृथक् नियम बनाए। यदि साधु श्रावकों के तथा श्रावक साधुओं के नियमों की होड़ में आएंगे तो सब कुछ गड्ढमड्ढ हो जाएगा। यदि किसी को तीव्रगति से चलने की रुचि है तो उसे अपना वाहन बदलना होगा। मंदगति का वाहन जब तक आपके पास है तब तक गति भी, सरणि भी वही रखनी होगी। वाहन मंदगति का पर सरणि तेजवाली और गति भी तेज दुर्घटना का निमन्त्रण है। श्रावक जीवन जब तक है तब तक श्रावकोचित नियम निभाएं। अधिक नियमों की रुचि बन रही है तो साधु बनें। बारह व्रतों को अधिक शुद्धि के साथ, मन, वचन, काया की समग्रता से निभाने में तीर्थधर्म की सुरक्षा है न कि

साधुचित मर्यादाओं को अपनाने मात्र में। बारह व्रतों के बाद ग्यारह प्रतिमाओं का ग्रहण और आसेवन ही वर्तमान युग में लुप्त हो चुका है तो साधुओं के लोच आदि विधि विधान श्रावकों द्वारा कैसे पालनीय माने जा सकते हैं।

अन्त में, सविनय निवेदन है कि किसी संघ, श्रावक या व्यक्ति विशेष के निजी जीवन का विरोध न मानकर जिन शासन के पारम्परिक प्रतीकों की सुरक्षा का प्रयत्न मानेंगे तो पूर्वोक्त विचारों से कषाय वृद्धि नहीं होगी।

आगमों के भावार्थ को समझने समझाने में कोताही हुई हो -

तस्यमिच्छामि दुक्कडं ।

सन्दर्भ

१. उत्तराध्ययन सूत्र, सम्पा. मधुकर मुनि, अध्ययन २८, गाथा
२. तत्त्वार्थसूत्र, उमास्वाति, १/१
३. उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन ३०, गाथा १-६
४. अचले लाघविय आगममाणे। तवे से अभिसमण्णागते भवति।।
आचारांग सूत्र, सम्पा. मधुकर मुनि, १/७/२२६
५. औपपातिक सूत्र, सूत्र ८९-११६, पृ. १४१-१५३

जैन परम्परा में श्रावक प्रतिमा की अवधारणा

डॉ० कुमार शिवशंकर

कोशकारों ने प्रतिमा के मूर्ति, प्रतिकृति, प्रतिबिम्ब, बिम्ब, छाया, प्रतिच्छाया आदि अनेक अर्थ किये हैं, किन्तु जैन ग्रन्थों में प्रतिमा का अर्थ है- प्रतिज्ञा- विशेष^१, व्रत-विशेष, तप-विशेष, साधना पद्धति। नैतिक विकास के हर चरण पर साधक द्वारा प्रकट किया हुआ दृढ़ निश्चय ही प्रतिमा अर्थात् श्रेणी कहा जाता है।^२ श्रावक प्रतिमाएँ वस्तुतः गृही-जीवन में की जाने वाली साधना की विकासोन्मुख श्रेणियाँ (भूमिकाएँ) हैं, जिन पर क्रमशः चढ़ता हुआ साधक अपनी आध्यात्मिक प्रगति कर जीवन के परमादर्श 'स्वस्वरूप' को प्राप्त कर लेता है।^३

श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्पराओं के ग्रन्थों में उपासक की एकादश प्रतिमाओं का वर्णन आया है। क्रम व नामों में थोड़े अन्तर हैं, जो निम्न प्रकार द्रष्टव्य हैं :-

श्वेताम्बर परम्परानुसार^४ :- १. दर्शन, २. व्रत, ३. सामायिक, ४. प्रौषध, ५. नियम, ६. ब्रह्मचर्य, ७. सचित्तत्याग, ८. आरम्भत्याग, ९. प्रेष्य-परित्याग, १०. उद्दिष्टभक्त्याग तथा ११. श्रमणभूत।

दिगम्बर मतानुसार^५ :- १. दर्शन, २. व्रत, ३. सामायिक, ४. प्रौषध, ५. सचित्त त्याग, ६. रात्रि भोजन एवं दिवामैथुन विरति, ७. ब्रह्मचर्य, ८. आरम्भत्याग, ९. परिग्रहत्याग, १०. अनुमति त्याग और ११. उद्दिष्ट त्याग। इनके क्रम और संख्या के सम्बन्ध में दिगम्बर आचार्यों में भी मतभेद है। स्वामी कार्तिकेय ने इनकी संख्या १२ मानी है। इसी प्रकार आचार्य सोमेदव ने दिवा-मैथुनविरति के स्थान पर रात्रिभोजनविरति प्रतिमा का विधान किया है।^६

डॉ० सारगमल जैन ने दोनों परम्पराओं की सूचियों पर विचार करते हुए लिखा है कि श्वेताम्बर और दिगम्बर सूचियों में प्रथम चार नामों एवं उनके क्रम में साम्य है। श्वेताम्बर परम्परा में सचित्त त्याग का स्थान सातवाँ है, जबकि दिगम्बराम्नाय में उनका स्थान पाँचवाँ है। दिगम्बराम्नाय में ब्रह्मचर्य का स्थान सातवाँ है, जबकि श्वेताम्बराम्नाय में ब्रह्मचर्य का स्थान छठा है। श्वेताम्बर परम्परा में परिग्रह त्याग की स्वतंत्र भूमिका नहीं है, जबकि वह दिगम्बर परम्परा में ९वें स्थान पर है। शेष दो प्रेष्यत्याग और उद्दिष्टत्याग दिगम्बर परम्परा में अनुमतित्याग और उद्दिष्टत्याग के नाम से अभिहित हैं, लेकिन श्वेताम्बर परम्परा में परिग्रह-त्याग की स्वतंत्र भूमिका नहीं मानने के कारण ११ की संख्या में जो एक की कमी होती है, उसकी पूर्ति श्रमणभूत नामक प्रतिमा

जोड़कर की गई है, जबकि दिगम्बर परम्परा में वह उद्दिष्टत्याग के अन्तर्गत ही है, क्योंकि श्रमणभूतता और उद्दिष्टत्याग समानार्थक ही हैं।^{१०}

ग्यारह प्रतिमाओं का स्वरूप :

१. दर्शन-प्रतिमा : साधक की अध्यात्म-मार्ग की यथार्थता के सम्बन्ध में दृढ़ निष्ठा एवं श्रद्धा होना ही दर्शन-प्रतिमा है।^{११} दर्शन का अर्थ है दृष्टिकोण और आध्यात्मिक विकास के लिए दृष्टिकोण की विशुद्धता प्राथमिक एवं अनिवार्य शर्त है। दर्शन-विशुद्धि की प्रथम शर्त है- क्रोध, मान, माया और लोभ, इस कषायचतुष्क की तीव्रता में मन्दता। जब तक इन कषायों का अनन्तानुबन्धी रूप समाप्त नहीं होता, दर्शनविशुद्धि नहीं होती। दर्शनप्रतिमा में साधक इन कषायों की तीव्रता को कम कर सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। यह गृहस्थ-धर्म की प्रथम भूमिका है। इस अवस्था में साधक शुभ को शुभ और अशुभ को अशुभ के रूप में जानता है, लेकिन उसके लिए यह आवश्यक नहीं कि वह शुभाचरण करे ही।^{१२}

२. व्रत प्रतिमा : अतिचार रहित पंच अणुव्रतों का सम्यक् प्रकार से पालन करना, उनमें किसी भी प्रकार का दोष नहीं लाने देना व्रत प्रतिमा के अन्तर्गत माना गया है।^{१३} इस प्रतिमा का साधक तीनों शल्यों से मुक्त होता है। वह शीलव्रत, गुणव्रत, प्रत्याख्यान आदि का भी अभ्यास करता है। द्वादश व्रतों में आठवें व्रत तक तो वह नियमित रूप से पालन करता है, पर सामायिक, देशावकाशिक व्रतों की आराधना परिस्थिति के कारण नियमित रूप से सम्यक् प्रकार से नहीं कर पाता। लेकिन उनकी श्रद्धाप्ररूपणा सम्यक् होती है। सामान्य श्रावक अणुव्रत और गुणव्रत को धारण करता भी है और नहीं भी करता है, जबकि व्रत प्रतिमा में अणुव्रत और गुणव्रत धारण करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है।

३. सामायिक प्रतिमा : इस प्रतिमा में साधक 'समत्व' प्राप्त करता है। 'समत्व' के लिए किया जाने वाला प्रयास सामायिक कहलाता है।^{१४} इसमें साधक अपने अपूर्व बल, वीर्य व उल्लास से पूर्व प्रतिमाओं का सम्यक् प्रकार से पालन करता है और उनके बार सामायिक की साधना करता है। अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्व दिनों में प्रतिपूर्ण प्रौषध भी करता है। दिगम्बर ग्रन्थों के अनुसार सामायिक प्रतिमा में तीनों संध्याओं में सामायिक करना आवश्यक माना गया है। सामायिक में उत्कृष्ट काल छः घड़ी का है। एक बार में दो घड़ी का है। आचार्य समन्तभद्र का यह अभिमत है^{१५} कि इसमें जो सामायिक होती है, वह 'यथाजात' होती है। यथाजात से इनका तात्पर्य यह है कि नग्न होकर सामायिक की जाय। तीन बार दिन में दो-दो घड़ी तक नग्न

रहने से आगे चलकर वह दिगम्बर श्रमण बन सकता है। श्वेताम्बर परम्परा में इस प्रकार का विधान नहीं है।

४. प्रौषध प्रतिमा : व्रत की दृष्टि से प्रौषध ग्यारहवाँ व्रत है और प्रतिमा की दृष्टि से वह चतुर्थ प्रतिमा है। व्रत में व्रती देशतः प्रौषध भी कर सकता है, परन्तु, प्रस्तुत प्रतिमा में प्रतिपूर्ण प्रौषध करने का विधान है। दशाश्रुतस्कन्ध में स्पष्ट वर्णन है कि श्रावक अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णमासी प्रभृत पर्व दिनों में प्रतिपूर्ण प्रौषधोपवास करो।^{१३} आचार्य समन्तभद्र के अनुसार पर्व के दिनों में तथा एक मास में आने वाली दो अष्टमी और दो चतुर्दशी के दिन अपनी शक्ति को नहीं छिपाते हुए प्रौषधपूर्वक अर्थात् एकभुक्ति पूर्वक (एक बार आहार) चार प्रकार के आहार का त्याग करना आत्माभिमुख रहने वाले व्रती की प्रौषधोपवास प्रतिमा है।^{१४} इस प्रतिमा का प्रयोजन पाँचों इन्द्रियों को वश में करना है, क्योंकि इस काल में स्नान, विलेपन, आभूषण, स्त्रीसंसर्ग, पुष्प-इत्र आदि के सेवन का निषेध है। आरम्भादि का भी त्याग होता है।^{१५}

५. नियम प्रतिमा : इसे कायोत्सर्ग प्रतिमा एवं दिवामैथुनविरत प्रतिमा भी कहा जाता है।^{१६} इस प्रतिमा में श्रावक विविध नियमों को ग्रहण करता है। उनमें पाँच बातें प्रमुख हैं- स्नान नहीं करना, रात्रि में चारों प्रकार के आहार का परित्याग करना, धोती को लांग नहीं लगाना, दिन में पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना तथा रात्रि में प्रतिमा का भलीभाँति पालन करना। इस तरह विविध नियमों को श्रावक धारण करता है। एक माह में एक रात्रि कायोत्सर्ग की साधना करता हुआ व्यतीत करता है। इसमें श्रद्धा, धृति, संवेग, संहनन के अनुसार धर्म-ध्यान की आराधना की जाती है। लाटी-संहिता में लिखा है कि रोगादि होने पर उसके शमनार्थ रात्रि में गंध-माल्याविलेपन और तेलाभ्यंगन भी नहीं करना चाहिए।^{१७} पं. प्रवर दौलतरामजी ने रात्रि में गमनागमन के साथ ही साथ अन्य आरम्भ का भी निषेध किया है।^{१८}

६. ब्रह्मचर्य प्रतिमा : पाँचवीं प्रतिमा में श्रावक दिवा-मैथुन का त्याग करता है, पर रात्रि में इसका नियम नहीं होता। किन्तु प्रस्तुत प्रतिमा में वह दिन और रात्रि-दोनों में मन-वचन-काय से अब्रह्म का त्याग करता है। वह पूर्ण जितेन्द्रिय बन जाता है। वह इन्द्रियों के विषय-विकारों में आसक्त नहीं होता।^{१९} दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थों में इस छठी प्रतिमा का नाम 'रात्रिभुक्ति त्याग' दिया है और उसपर चिन्तन करते हुए लिखा है कि प्रस्तुत प्रतिमा का सम्बन्ध उपभोग-परिभोग परिमाणव्रत से है। उपभोग के योग्य पदार्थों में सबसे प्रधान वस्तु है- स्त्री। अतः रात्रि में भी मन-वचन और काय से स्त्री-सेवन का परित्याग किया जाता है। प्रतिमा धारण करने के पूर्व भी श्रावक दिन में मैथुन का सेवन नहीं करता, किन्तु हास-परिहास के रूप में वह मनोविनोद कर

लेता था। किन्तु प्रतिमा धारण करने के पश्चात् उसका भी वह परित्याग कर देता है। दिवा-मैथुन और रात्रि-भुक्ति त्याग - ये दोनों कार्य इस प्रतिमा में करणीय होते हैं।

७. सच्चित्तत्याग प्रतिमा : इस प्रतिमा का अर्थ है- यावज्जीवन के लिए सभी प्रकार के सच्चित्त आहार का परित्याग कर अचित्त आहार को ग्रहण करना। आहार प्रत्येक जीवात्मा के लिए आवश्यक है। पर जो आहार भक्ष्य व अचित्त हो, वही प्रस्तुत प्रतिमाधारी श्रावक ग्रहण कर सकता है। जो आहार सच्चित्त है, उसे वह ग्रहण नहीं कर सकता। यथा-गुठलीयुक्त आम, गुठलीयुक्त पिण्ड खजूर, बीजयुक्त मुनक्का आदि। यह प्रतिमाधारी श्रावक अप्रासुक अर्थात् अग्नि में न पकाये हुए हरित अंकुर, बीज, जल, नमकादि नहीं खाता।^{२०}

८. आरम्भत्याग प्रतिमा : सच्चित्त त्याग के पश्चात् सभी प्रकार के सावद्य आरम्भ का त्याग किया जाता है। आरम्भ शब्द जैन परम्परा का एक पारिभाषिक शब्द है, जिसका अर्थ है - हिंसात्मक क्रिया। श्रमणोपासक संकल्पपूर्वक त्रस जीवों की हिंसा नहीं करता, किन्तु कृषि, वाणिज्य, अन्य व्यापार और घर-गृहस्थ के कार्यों को करते हुए षट्काय जीवों की हिंसा हो जाती है। इस प्रकार की वाणी का उपयोग करना, जिससे दूसरों का हृदय तिलमिला उठे, यह वाचिक आरम्भ है। शस्त्र आदि के द्वारा या शारीरिक क्रियाओं के द्वारा किसी प्राणी का हनन करना कायिक आरम्भ है। इस तरह मानसिक, वाचिक और कायिक- तीनों आरम्भ का त्याग किया जाता है।^{२१} आचार्य सकलकीर्ति ने इस प्रतिमाधारी को रथादि की सवारी के त्याग का भी विधान किया है।^{२२}

९. प्रेष्य परित्याग प्रतिमा अथवा परिग्रहत्याग प्रतिमा : प्रस्तुत प्रतिमाधारी सेवक व्यक्तियों से किंचित् मात्र भी आरम्भ नहीं कराता है। वह जलयान, नभोयान, स्थलयान आदि किसी भी वाहन का उपयोग न स्वयं करता है और न दूसरों को उपयोग करने के लिए कहता ही है। जितने भी गृहस्थ सम्बन्धी कार्य हैं, यथा-गृहनिर्माण, व्यापार, विवाह आदि जिनमें आरम्भ रहा हुआ होता है, उन्हें वह मन-वचन-काय से न स्वयं करता है और न दूसरों से करवाता है, किन्तु उसके अनुमोदन का त्याग नहीं करता। इस प्रतिमा में उसके परिग्रह की वृत्ति भी न्यून हो जाती है। परिग्रह की वृत्ति न्यून होने से इस प्रतिमा का अपर नाम परिग्रह परित्याग भी है। पंडित दौतलरामजी ने अपने क्रिया-कोष ग्रन्थ में लिखा है कि प्रस्तुत प्रतिमाधारी श्रावक काष्ठ और मिट्टी से निर्मित पात्र रख सकता है, धातु पात्र नहीं रख सकता।^{२३} गुणभूषण ने प्रस्तुत प्रतिमाधारी श्रावक के लिए वस्त्र के अतिरिक्त सभी प्रकार के परिग्रह त्याग का वर्णन किया है।^{२४}

१०. उद्दिष्टभक्तत्याग प्रतिमा : प्रस्तुत प्रतिमा धारण के बाद अपने निमित्त से बना हुआ आहार भी श्रावक ग्रहण नहीं करता। वह निरन्तर स्वाध्याय और ध्यान में तल्लीन रहता है। वह अपने शिर के बालों का शस्त्र से मुण्डन करवाता है, किन्तु चोटी अवश्य रखता है, क्योंकि वह गृहस्थाश्रम का चिह्न है।^{२५} प्रस्तुत प्रतिमाधारी श्रावक की यह विशेषता है कि वह जिसके सम्बन्ध में जानता है तो पूछने पर कहे कि 'मैं जानता हूँ' और यदि नहीं जानता है तो स्पष्ट रूप से कह दे कि 'मैं नहीं जानता हूँ।' वह ऐसी भाषा का प्रयोग नहीं करता, जिससे किसी को हानि हो। वह भाषा का पूर्ण विवेक रखता है।

दिगम्बर परम्परा के अनुसार इस प्रतिमा का नाम **अनुमतित्याग प्रतिमा** है। जिसका अर्थ है- जो भी आरम्भ आदि के कार्य हैं, उनके लिए वह अनुमति भी नहीं देता। वह घर में रहकर भी इष्ट-अनिष्ट कार्यों के प्रति न राग करता है, न द्वेष ही करता है। कमल की तरह निर्लिप्त रहता है। भोजन का समय होने पर भोजन के लिए आमंत्रित करने पर वह भोजन कर लेता है। भले ही वह भोजन उसके लिए निर्मित हो। किन्तु भोजन की अनुमोदना नहीं करता। वह परिमित वस्त्र धारण करता है। अपने निमित्त बने हुए भोजन व वस्त्र के अतिरिक्त वह किसी भी भोगोपभोग सामग्री का उपयोग नहीं करता। जब उसे प्रतीत होता है कि घर में रहने से आकुलता रहती है, जिससे साधना में बाधा उपस्थित होती है, तो वह घर का परित्याग कर निर्ग्रन्थ श्रमणों की सेवा में पहुँच जाता है। उसके पश्चात् वह मुनि बन जाता है।

११. श्रमणभूत प्रतिमा : प्रस्तुत प्रतिमाधारी श्रावक श्रमण के सदृश जीवन यापन करता है। वह श्रमण के समान निर्दोष भिक्षा, प्रतिलेखन, स्वाध्याय, ध्यान, कायोत्सर्ग, समाधि आदि में लीन रहता है। सभी प्रतिमाओं का निरतिचार पालन करता है। उसकी वेश-भूषा निर्ग्रन्थ की भाँति होती है। वह मुख पर मुखवस्त्रिका, चोलपट्टक, चदर तथा रजोहरण, आदि जो श्रमण की वेश-भूषा है, उसी तरह धारण करता है। यदि शरीर में शक्ति हो तो दाढ़ी-मूँछ आदि का लुंचन करता है और शक्ति के अभाव में उस्तरे आदि से भी मुण्डन करवा सकता है। पंच समिति का पालन करता है। वह श्रमण की भाँति हर घर से भिक्षा लेता है, किन्तु स्वजाति और स्वघरों से भिक्षा ग्रहण करता है, अज्ञात कुल से नहीं। जब वह किसी गृहस्थ के घर भिक्षा के लिए जाता है, तब वह कहता है- 'प्रतिमा-प्रतिपन्न श्रमणोपासक को भिक्षा दो।' वह श्रमण की तरह मौन होकर भिक्षा के लिए नहीं जाता।

दशाश्रुतस्कन्ध के अनुसार ग्यारहवीं प्रतिमा सम्पन्न कर श्रमणोपासक श्रमण बन जाता है।^{२६} आचार्य हरिभद्र का मन्तव्य है कि साधक कितनी ही बार संक्लेश बढ़ जाने से श्रमण न बनकर गृहस्थ भी हो जाता है।^{२७}

दिगम्बर परम्परा में ग्यारहवीं प्रतिमा का नाम **उद्दिष्टत्याग** है। यहाँ ग्यारहवीं प्रतिमा के क्षुल्लक और ऐलक- ये दो भेद किये गये हैं।^{२८} क्षुल्लक एक ही वस्त्र रखता है। वह मुनियों की तरह खड़े-खड़े भोजन नहीं करता। उसके लिए आतापन योग, वृक्षमूलक योग प्रभृति योगों की साधना का भी निषेध है। वह क्षौर कर्म से मुण्डन भी करवा सकता है और लोंच भी। पाणिपात्र में भी भोजन कर सकता है और कांसे के पात्र आदि में भी। कोपीन लगाता है, इसलिए वह क्षुल्लक कहलाता है।

दूसरा भेद 'ऐलक' है। ऐलक शब्द ग्यारहवीं प्रतिमाधारक नाम मात्र का वस्त्र धारण करने वाले उत्कृष्ट श्रावक के लिए व्यवहृत होने लगा। वह केवल कोपीन के अतिरिक्त सभी प्रकार के वस्त्रों का परित्यागी होता है। साथ ही मुनियों की तरह खड़े-खड़े भोजन करता है, केशलुंचन करता है और मयूर पिच्छी रखता है।

ग्यारहवीं प्रतिमाधारी श्रावक के लिए आचार्य सकलकीर्ति ने केवल मुहूर्त प्रमाण निद्रा लेने का उल्लेख किया है।^{२९} लाटी संहिता में क्षुल्लक के लिए कांस्य या लौह-पात्र में भिक्षा लेने का विधान है।^{३०} सकलकीर्ति ने सर्वधातु का कमण्डलु और छोटा पात्र यानी थाली रखने का विधान किया है।^{३१}

इस प्रकार हम देखते हैं कि गृहस्थ-साधना की उपरोक्त भूमिकाओं और कक्षाओं की व्यवस्था इस प्रकार से की गयी है कि जो साधक वासनात्मक जीवन से एकदम ऊपर उठने की सामर्थ्य नहीं रखता, वह निवृत्ति की दिशा में क्रमिक प्रगति करते हुए अन्त में पूर्ण निवृत्ति के आदर्श को प्राप्त कर सके।^{३२}

सन्दर्भ

१. (क) प्रतिमा- प्रतिपत्ति: प्रतिज्ञेतियावत् - स्थानांगवृत्ति, पत्र ६१
(ख) प्रतिमा- प्रतिज्ञा अभिग्रहः - वही, पत्र - १८४
२. जैन, बौद्ध तथा गीता के आचारदर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ० सागरमल जैन, भाग-२, पृ० ३१७
३. वही, पृ० ३१७
४. (क) दशाश्रुतस्कन्ध, ६ दशा तथा (ख) विंशिका- १०वीं प्रतिमा- ले०- आचार्य हरिभद्र
५. चारित्रपाहुड-२२, रत्नकरण्ड श्रावकाचार- १३७-१४७, वसुनन्दि श्रावकाचार- ४
६. वसुनन्दि श्रावकाचार की भूमिका, पृ० ६०
७. जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, भाग-३, पृ० ३१८
८. वही, पृ० ३१९

22 : श्रमण, वर्ष 67, अंक 2, अप्रैल-जून, 2016

९. वही, पृ० ३१९-३२०
१०. विंशतिका, १०.५
११. जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, भाग-२, पृ० ३२०
१२. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, १३९
१३. दशाश्रुतस्कन्ध, ६.४
१४. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, १४०
१५. वही, १०७
१६. जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, भाग-२, पृ० ३२१
१७. लाटी संहिता, श्लोक २०, पं० राजमल्लजी।
१८. श्रावकाचार, भाग-५, पृ० ३७२-७३
१९. (क) दशाश्रुतस्कन्ध, ६.६.
(ख) विंशतिका, १०.९-११
२०. सागार धर्माभूत, ७.८
२१. विंशतिका, १०.१४
२२. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार, श्लो० १०७
२३. क्रिया-कोष, श्रावकाचार, भाग-५, पृ० ३७५
२४. गुणभूषण श्रावकाचार, भाग-२, श्लोक ७३, पृ० ४५४
२५. दशाश्रुतस्कन्ध, ६.१०
२६. वहीं, ६.११
२७. आसेविकुण एवं कोई पव्वयइ तह गिही होई।
तब्बावभेयओ च्चिय विशुद्धिसंकेसभेएणं। विंशतिका, १०.१८
२८. देखिए- वसुनन्दि श्रावकाचार, सागारधर्माभूत, धर्मसंग्रह, गुणभूषण श्रावकाचार आदि।
२९. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार, श्लोक ११०, पृ० ४३४
३०. लाटी संहिता, श्लोक ६४
३१. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार, श्लोक- ३४, ४१-४२
३२. जैन, बौद्ध और गीता के आचारदर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, भाग-२, पृ० ३२४

जैन परम्परा में वर्षायोग का महत्त्व

आशीष कुमार जैन

जैन परम्परा में वर्षायोग का बहुत ही महत्त्व है। जैन धर्म में चातुर्मास, वर्षायोग, वर्षावास ये तीनों ही शब्द एकार्थवाची हैं। श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक इन चार माहों में वर्षायोग होने से इसे चातुर्मास कहते हैं। वर्षायोग का संबन्ध वर्षा ऋतु के मात्र दो माह से नहीं अपितु वर्षाकाल के चार मासों से है।

प्राकृत हिन्दी शब्दकोश में 'चातुर्मास' शब्द का उल्लेख इस प्रकार मिलता है-

चाउमास / चाउम्मास - चातुर्मास, चौमासा, आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन मास की शुक्ल चतुर्दशी।

चाउम्मासिअ (चातुर्मासिक) - चार मास सम्बन्धी, जैसे आषाढ़ से लेकर कार्तिक तक चार महीनों से सम्बन्ध रखने वाला। आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन मास की शुक्ल चतुर्दशी तिथि, पर्व विशेष।

चाउम्मासी (स्त्री) (चातुर्मासी) - चार मास, चौमासा, आषाढ़ से कार्तिक, कार्तिक से फाल्गुन और फाल्गुन से आषाढ़ तक के चार महीने।

इसी तरह एकार्थक कोश में भी **चातुर्मास**^३ शब्द का उल्लेख इस प्रकार है-

चाउमासित (चातुर्मासिक) - चाउम्मासितो संवच्छरिउ त्ति वा वासारत्तिउ त्ति वा एगट्टं।

चाउम्मासित^३ (चातुर्मासिक) - सामान्यतः चातुर्मास चार मास का होता है अतः उसे चातुर्मासिक कहा जाता है। प्राचीन काल में साल का प्रारम्भ चातुर्मास से होता था अतः वर्षावास का एक नाम सांवत्सरिक भी है।

दूसरा शब्द है 'वर्षायोग' - 'वर्षायोग' का उल्लेख दिगम्बर जैन ग्रन्थों में मिलता है, मूलाचार^४ ग्रन्थ में मुनियों के दस श्रमण कल्पों में से मास नामक कल्प में वर्षायोग का विधान है। वहाँ पर कहा है कि 'वर्षायोग ग्रहण से पहले एक मास पर्यन्त रहकर वर्षाकाल में वर्षायोग ग्रहण करना तथा वर्षायोग को समाप्त करके पुनः एक मास तक अवस्थान करना चाहिए। लोक स्थिति को बतलाने के लिए और अहिंसा आदि व्रतों का पालन करने के लिए वर्षायोग के पहले एक मास रहने का और अनन्तर भी एक मास तक रहने का विधान है। यह विधान श्रावक आदिकों के

संकलेश का परिहार करने के लिए है। अथवा ऋतु-ऋतु दो (दो माह की एक ऋतु) अर्थात् प्रत्येक ऋतु में एक-एक मास तक रहना चाहिए और एक-एक मास तक विहार करना चाहिए। ऐसा यह मास नामक श्रमण कल्प है। अथवा वर्षाकाल में वर्षायोग ग्रहण करना और चार महिनों में नन्दीश्वर करना मास श्रमण कल्प है।

भगवती आराधना^६ में कहा गया है कि वर्षाकाल में चार मास में एक ही स्थान में रहना अर्थात् श्रमण का त्याग यह पाद्य नामक दसवाँ स्थिति कल्प है। वर्षाकाल में जमीन स्थावर और त्रस जीवों से व्याप्त होती है। ऐसे समय में मुनि यदि विहार करेंगे तो महा असंयम होगा, जलवृष्टि से, पेड़ से हवा बहने से आत्म विराधना होगी अर्थात् ऐसे समय में विहार करने से मुनि अपने आचार से च्युत हो जायेंगे, वर्षाकाल में भूमि जलमय होने से कुँआ, खड्डा इत्यादिक में गिर जाने की संभावना होती है, खूंट, कंटकादिक पानी से ढक जाने से विहार करते समय उनसे बाधा होने की संभावना होती है, कीचड़ में फंसने की भी सम्भावना रहती है, इत्यादि दोषों से वचने के लिए मुनि एक सौ बीस दिवस एक स्थान में रहते हैं, यह उत्सर्ग नियम है। कारणवश इससे अधिक या कम दिवस भी एक स्थान में ठहर सकते हैं। आषाढ़ शुक्ला दशमी से प्रारम्भ कर कार्तिक पूर्णिमा के आगे भी और तीस दिन तक एक स्थान में रह सकते हैं। अध्ययन, वृष्टि की अधिकता, शक्ति का अभाव, वैयावृत्य करना इत्यादि प्रयोजन हो तो अधिक दिन तक रह सकते हैं। मारी रोग, दुर्भिक्ष आदि के कारण ग्राम के लोगों का अथवा देश के लोगों का अपना स्थान छोड़कर अन्य ग्रामादिकों में जाना, गच्छ का नाश होने का निमित्त उपस्थित होना, इत्यादि कारण उपस्थित होने पर मुनि चातुर्मास में भी अन्य स्थान को जाते हैं, नहीं जाने पर उनके रत्नत्रय का नाश होगा इसलिये आषाढ़ पूर्णिमा व्यतीत होने पर प्रतिपदा वगैरह तिथि में अन्यत्र चले जाते हैं, इसलिए बीस दिन एक सौ बीस दिनों में कम किये जाते हैं।

तीसरा शब्द है 'वर्षावास'^६। यह शब्द श्वेताम्बर सम्प्रदाय के आगम ग्रन्थ आचारांगसूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में मिलता है। इस ग्रंथ में लिखा है कि वर्षाकाल आ जाने पर वर्षा हो जाने से बहुत से प्राणी उत्पन्न हो जाते हैं, बहुत से बीज अंकुरित हो जाते हैं, इस स्थिति को जानकर साधु को वर्षाकाल में एक ग्राम से दूसरे ग्राम विहार नहीं करना चाहिए। अपितु वर्षाकाल में यथावसर प्राप्त वसति में ही संयम रखकर वर्षावास व्यतीत करना चाहिए।

आचारांग-सूत्र में ही लिखा है कि वर्षावास में कहाँ, कैसे क्षेत्र में और कब तक रहें^७? साधु-साध्वी के लिए वर्षावास से सम्बन्धित ईर्या के नियम भी बताए गये हैं। इन नियमों का निर्देश करने के पीछे बहुत दीर्घदर्शिता, संयम-पालन, अहिंसा एवं

अपरिग्रह की साधना तथा साधुवर्ग के प्रति लोक श्रद्धा का दृष्टिकोण रहा है। एक ओर यह भी स्पष्ट बताया गया है कि वर्षाकाल के चार मास तक एक ही क्षेत्र में स्थित क्यों रहें? जबकि दूसरी ओर वर्षावास समाप्ति के बाद कोई कारण न हो तो नियमानुसार वह विहार कर दे, ताकि वहाँ की जनता, क्षेत्र आदि से मोह-बंधन न हो, जनता की साधु वर्ग के प्रति अश्रद्धा व अवज्ञा न बढ़े। वृद्धावस्था, अशक्ति, रुग्णता आदि हो तो वह उस क्षेत्र में भी रह भी सकता है।

अनंगार धर्मामृत ग्रन्थ की प्रस्तावना में सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री लिखते हैं कि वर्षाऋतु के अतिरिक्त साधु को गाँव में एक दिन और नगर में पाँच दिन ठहरना चाहिए। दोनों परम्पराओं को यह नियम मान्य है। श्वेताम्बर साहित्य के अनुसार पाँच कारणों से वर्षाऋतु में भी स्थान-परिवर्तन किया जा सकता है-

१. किसी ऐसे आचार्य से जिन्होंने आमरण आहार का त्याग किया हो, कोई आवश्यक अध्ययन करने के लिए।
२. किसी खतरनाक स्थान में किसी के पथभ्रष्ट होने से रोकने के लिए।
३. धर्म प्रचार के लिए।
४. यदि आचार्य या उपाध्याय का मरण हो जाये।
५. यदि आचार्य या उपाध्याय ऐसे प्रदेश में ठहरे हों जहाँ वर्षा नहीं होती तो उनके पास जाने के लिए।

कोई साधु एक ही स्थान पर दो वर्षावास नहीं कर सकता। वर्षाकाल बीत जानेपर भी यदि मार्ग कीचड़ से या जन्तुओं से भरा हो तो साधु पाँच से दस दिन तक उसी स्थान पर अधिक भी ठहर सकते हैं।^८

प्राचीन काल में मुनि जंगलों में निवास करते थे और वृक्षों के नीचे एकासन से योग धारण करते थे क्योंकि उस समय संहनन विशेष होता था। आज के समय में हीन संहनन होने के कारण साधुजन शक्ति के अनुसार ही साधन करते हैं, और पूर्व परंपरा को अक्षुण्ण बनाये हुए है।

अनंगार धर्मामृत^९ में वर्षायोग प्रतिष्ठापन के संबन्ध में लिखा है कि आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशी की पूर्वात्रि में साधु वर्षायोग प्रतिष्ठापन करते हैं। आचार्य आदि सभी साधु मिलकर सिद्धभक्ति और योगभक्ति करके 'यावन्ति जिनचैत्यानि' इत्यादि श्लोक बोलकर आदिनाथ एवं अजितनाथ की स्तुति बोलकर अंचलिका सहित लघु

26 : श्रमण, वर्ष 67, अंक 2, अप्रैल-जून, 2016

चैत्यभक्ति करके पूर्वदिशा में स्थित चैत्यालय की वन्दना करते हैं, ऐसे ही पुनः बोलकर संभवनाथ और अभिनन्दननाथ की स्तुति पढ़कर अंचलिका सहित लघु चैत्य भक्ति पढ़ कर दक्षिण दिशा में स्थित चैत्यालय की वन्दना करते हैं। इसी तरह सुमतिनाथ और पद्मप्रभु की स्तुति पूर्वक लघु चैत्य भक्ति करके पश्चिम दिशा तथा सुपार्श्वनाथ एवं चन्द्रप्रभु की स्तुति सहित लघु चैत्य भक्ति करके उत्तर दिशा में स्थित जिन चैत्यालय की वन्दना करते हैं।

वहाँ पर बैठे हुए लोग चारों दिशाओं में तंदुल-पीताक्षत प्रक्षेपण करते हैं। पुनः साधु पंचगुरुभक्ति, शान्तिभक्ति एवं समाधि-भक्ति पूर्वक संकल्प करते हैं और दिशा विदिशाओं की जाने की मर्यादा करते हैं।

इस प्रकार की क्रिया करने के बाद कलश को स्थापित करते हैं। हालांकि चातुर्मास कलश स्थापना का वर्णन अलग से किसी भी ग्रन्थ में हमारे स्वाध्याय में दृष्टिगोचर नहीं हुआ, फिर भी हम सभी को पूर्व से चली आ रही परम्परा का पालन करना उचित होगा। प्रत्येक मंगल कार्य में आचार्यों ने मंगल कलश स्थापना का वर्णन किया है। चातुर्मास भी एक मंगल कार्य है, जैन दर्शन में पूर्ण कलश मंगल का प्रतीक है और चातुर्मास भी मंगल का प्रतीक है।

यही क्रिया कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की रात्रि के अन्तिम प्रहर में वर्षायोग निष्ठापना पर की जाती है। पुनः वर्षायोग निष्ठापन के बाद सूर्य का उदय होने पर भगवान महावीर स्वामी की निर्वाण क्रिया में सिद्धभक्ति, निर्वाणभक्ति, पंचगुरुभक्ति और शांतिभक्ति करनी चाहिए।^{१०}

वर्षायोग निष्ठापन व प्रतिष्ठापन क्रिया के सम्बन्ध में जैनेन्द्र सिद्धांत कोश^{११} में लिखा है कि आषाढ़ शुक्ला १४ की रात्रि के प्रथम पहर में प्रतिष्ठापन और कार्तिक कृष्णा १४ की रात्रि के चौथे पहर में निष्ठापन करना।

चातुर्मास आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी के दिन प्रारंभ होता है और किन्हीं परिस्थितियोंवशा श्रावण शुक्ला पंचमी तक भी स्थापना हो सकती है। इस चतुर्दशी के दिन प्रतिक्रमण किया जाता है। जिसमें सातों प्रकार के (दैवसिक, रात्रिक, एर्यापथिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक और उत्तमार्थ) प्रतिक्रमण समाहित हो जाते हैं।^{१२} चातुर्मास में आधा योजन तक जाने की छूट रहती है। मूलाचार में चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में चार सौ उच्छ्वासों का कायोत्सर्ग का प्रमाण दिया है जिसका चिन्तवन करना चाहिए।

वर्षायोग का हेतु :

यम संयम रक्षार्थ, प्रजा बोधन हेतवे।

श्रुत ध्यान विकासार्थ, वर्षयोग विधीयते।^{११}

साधुजन वर्षायोग करते हैं यह आगम का विधान है। परन्तु वर्षायोग क्यों करते हैं? वर्षायोग करने का हेतु, कारण क्या है? वर्षायोग का प्रयोजन क्या है?

साधुजन वर्षायोग स्थापना यम, संयम की रक्षा के लिए करते हैं। संयम को निर्दोष रखने के लिए वर्षायोग करते हैं। वर्षायोग में साधुजन चार मास तक एक ही स्थान पर रहते हैं। एक ही स्थान पर रहने का हेतु यह है कि वर्षायोग के समय वर्षा बहुत होती है। वर्षा के कारण असंख्य जाति के अति सूक्ष्म त्रस जीव उत्पन्न होते हैं, जो आँखों से देखने में नहीं आते हैं। ऐसे समय गमनागमन करने से उन लघुकाय जीवों की विराधना होगी, जिससे संयम की रक्षा नहीं हो सकेगी। अतः संयम के रक्षा हेतु वर्षायोग का विधान है।

आचार्य श्री सुनीलसागर जी महाराज ने प्राकृत भाषा में 'चादुम्मासो य आगदो' नाम से एक कविता लिखी है जिसकी एक गाथा इस प्रकार है-

मुणी चागी य कुव्वंति, बरिसाए सुसाहणं।

जीवाणं रकखणं सेट्टं चादुमासो य आगदो।^{१२}

जिस वर्षाकाल में मुनि व त्यागीगण विशेष रूप से श्रेष्ठ साधना करते हैं, जीवों की श्रेष्ठ रक्षा करते हैं, ऐसा यह चातुर्मास का काल आ गया।।

दूसरा हेतु है प्रजा को संबोधन हेतु, तीर्थकर दिव्य देशना भव्य प्राणियों तक पहुँचाने के लिए एवं धर्म प्रभावना के लिए। तीसरा हेतु है श्रुत वर्धन के लिए- एक स्थान पर रुकने से ज्ञान की वृद्धि होती है, ज्ञान बढ़ता है। स्वाध्याय अधिक मात्रा में होता है। वर्षायोग का चौथा हेतु है ध्यान के लिए- इससे अधिक मात्रा में समय ज्ञान, ध्यान आदि के लिए मिल जाता है। ज्ञान, ध्यान के विकास के लिए वर्षायोग को विधिवत धारण करते हैं।

चातुर्मास काल में साधुजनों को चार माह तक एक ही स्थान पर रहने से ध्यान, चिन्तन व स्वाध्याय का अधिक अवसर मिलता है, उनकी त्याग तपस्या भी सर्वाधिक होती है तथा श्रावकजन को भी साधुजनों की सेवा, सुश्रुषा व आहारदान देने का

अच्छा अवसर मिलता है। साधुजनों के उपदेशों से शिविर व कक्षाओं के माध्यम से धर्म को सीखने, समझने का अवसर मिलता है जिससे धर्म की प्रभावना होती है।

वर्षाकाल में प्रायः व्यवसाय, शादी-विवाह आदि नहीं होने से श्रावकों को धर्म करने के लिए अधिक समय मिल जाता है।

सबसे अधिक पर्व वर्षायोग में ही आते हैं- जैसे गुरुपूर्णिमा, वीरशासन जयन्ति, मुकुटसप्तमी, रक्षाबन्धन, षोडशकारण पर्व, दशलक्षण पर्व, दीपावली (भगवान महावीर स्वामी का निर्वाण महोत्सव) आदि जो जैन धर्म की प्रभावना के आधार स्तम्भ होते हैं। पर्व धर्म की प्रभावना में निमित्त होते हैं इसी कारण साधुजन वर्षायोग की स्थापना करते हैं।

यह चार माह का वर्षायोग साधना के लिए अनुकूल मौसम होता है। इसमें न अधिक गर्मी होती है न अधिक सर्दी होती है। समशीतोष्ण रहता है जिससे व्रत साधना अच्छी तरह से हो जाती है।

साधु एवं साध्वी ऐसे स्थानों पर वर्षायोग करते हैं जिस स्थान पर संयम की विराधना न हो। यदि किसी भी प्रकार से संयम की विराधना होने लग जाए तो साधुजन उस स्थान से की हुई मर्यादा तक विहार भी कर सकते हैं।

चातुर्मास की स्थापना आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी को होती है और समाप्ति कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी को होती है। आषाढ़ शुक्ल से कार्तिक कृष्णा तक पूरे चार माह नहीं होते हैं केवल साढ़े तीन माह ही होते हैं। उसका कारण यह है कि कार्तिक कृष्णा अमावस्या को भगवान महावीर स्वामी को निर्वाण की प्राप्ति हुई थी और जैसे ही मुनियों, साधुओं को ज्ञात हुआ वैसे ही वे साधुजन अपने वर्षायोग का निष्ठापन करके भगवान महावीर स्वामी के दर्शन हेतु गमन कर गये। इस कारण से चातुर्मास साढ़े तीन माह का रह गया। इसी कारण से ही भगवान महावीर के निर्वाण महोत्सव के बाद ही वर्षायोग का विसर्जन करते हैं। आप सभी चातुर्मास के पावन अवसर पर अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को धर्ममय बनायें।

सन्दर्भ

1. प्राकृत-हिन्दी शब्दकोश, पृष्ठ नं० ३१७
2. एकार्थक कोश, पृष्ठ नं० ५८
3. वही, पृष्ठ नं० ३१४, परिशिष्ट - २
4. मूलाचार (उत्तरार्ध), पृष्ठ ११९, गाथा नं० ९११
5. भगवती आराधना (मूलाराधना), विजयोदया टीका पृष्ठ नं० ६३३-६३४

६. आचारांगसूत्र, द्वितीय श्रुतस्कन्ध, तृतीय अध्ययन, प्रथम उद्देशक, पृष्ठ नं० १७१
७. वही, पृष्ठ नं० १७४
८. अनगार धर्मावृत, प्रस्तावना, पृष्ठ नं० १९
९. ततश्चतुर्दशपूर्वरात्रे सिद्धमुनि स्तुती। चतुर्दिक्षु परित्याल्पाश्चैत्य भक्तीं गुरुस्तुतिम् ॥ शान्तिभक्तिं च कुर्वाणैर्वर्षायोगस्तु गृह्यताम्। ऊर्जकृष्णचतुर्दश्यां पश्चाद्रात्रौ च मुच्यताम् ॥ अनगार धर्मावृत, श्लोक ६६, ६७
१०. वही, श्लोक ७०, पृष्ठ नं० ६७६
११. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, पृष्ठ नं० १३९ भाग - २
१२. मूलाचार, गाथा, ६१५
१३. वर्षायोग स्थापना विधि, पृष्ठ नं० ५
१४. चादुम्मासो य आगदो, सराक सोपान (मासिक पात्रिका), सितम्बर २०१३

वाराणसी की नैगमेष मृण प्रतिमाएं : एक अध्ययन

डॉ० श्रुति मिश्रा

वाराणसी से मानव शरीर एवं पशु मुख के सादे अंकन की लगभग ३७ मृणमूर्तियाँ राजघाट (२९), सराय-मोहाना (१), सारनाथ (१) से प्राप्त हैं। इन मृणमूर्तियों में अत्यन्त साधारण शैली में निर्मित वस्त्र विहीन शरीर, लम्बे लटकते अजकर्ण, एवं पंखा सदृश शिरोभूषा अलंकरण है। अजमुख इनकी विशेषताएं हैं। प्रो० वासुदेव शरण अग्रवाल ने अहिच्छत्रा से प्राप्त ऐसी विशेषताओं की प्रतिमा को नैगमेष प्रकार का कहा है (अग्रवाल वी०एस०, १९८५ : ३०-३१)। वाराणसी से भी इसी वर्ग की नैगमेष एवं नैगमेषी मृणाकृतियाँ प्राप्त हुई हैं जिसमें चार वर्ग दिखते हैं :

- (अ) यज्ञोपवीत का अंकन
- (ब) नैगमेष (अजमुख) मृणमूर्तियाँ
- (स) नैगमेषी (अजमुख स्त्री) मृणमूर्तियाँ
- (द) नैगमेष मानव मुख प्रकार

(अ) यज्ञोपवीत का अंकन : राजघाट से कुशाणकालीन ३ नैगमेष की मृणाकृतियाँ प्राप्त हैं। इन आकृतियों में यज्ञोपवीत का अंकन है। नैगमेष मृणाकृतियों में यज्ञोपवीत का अंकन वाराणसी क्षेत्र की विशेषता है।

क्रम सं० १

राजघाट, खात सं० IV_B, स्तर सं० २; ए०सी०सी० नं० १०४

आकार : ९ से०मी०

चित्र सं० १

अजमुखी नैगमेष मूर्ति (हाथ भग्न)। परिष्कृत मिट्टी से हस्तनिर्मित, अच्छी पकी (लाल), पोत विहीन मृणमूर्ति। “नैगमेष मृणमूर्ति” के रूप में सम्बोधित एवं प्रकाशित (नारायण, ए०के० एवं पी०के० अग्रवाल, १९७८ : ८५)। मूर्ति में चुटकी से उभार कर मोटी शुकाकार नाक पर चौड़ा चीरा मुख, मिट्टी की गुटिका चिपकाकर मोटी शुकाकार नाक पर चौड़ा चीरा मुख, मिट्टी की गुटिका चिपकाकर आँखे एवं पुतली का अंकन है। कंधे तक लटके लम्बे कान अलग से जोड़े गये हैं। इस मृणाकृति के हाथ-पैर के सिरे पर लम्बा चीरा एवं बाँए कंधे से दाहिनी कमर तक टेढ़ी खाँच रेखा

वाराणसी की नैमेष मृण प्रतिमाएं : एक अध्ययन : 31

द्वारा यज्ञोपवीत सूत्र का अंकन है। यह मृणमूर्ति राजघाट उत्खनन के काल III (ई० सदी के प्रारम्भ से ३०० ई०) से प्राप्त है। इसके समान २ अन्य उदाहरण भी इसी काल से प्राप्त (नारायण, ए०के० एवं पी०के० अग्रवाल, १९७८ : ८७; XVI, B, ८.९) हैं।

नैमेष मृणमूर्तियों में यज्ञोपवीत का अंकन अहिच्छत्रा के स्ट्रेटम III (३५० से ७५० ई०) (अग्रवाल वी०एस०, १९८५ : ३२; फलक XVIII, A, १३३) से प्राप्त है। अन्य पुरास्थलों में नैमेष मृणाकृतियों में यज्ञोपवीत के अंकन का अभाव है। अहिच्छत्रा की नैमेष मृणमूर्ति में मानव मुख का अंकन है परन्तु आँखें अज्ञ समान चौड़ी फैली हैं। वाराणसी की इन प्रतिमाओं का काल ई० सदी के प्रारम्भ से ७०० ई० तक माना जा सकता है।

(ब) नैमेष (अजमुख) मृणमूर्तियाँ : नैमेष मृणमूर्तियों के इस वर्ग में २० मृणमूर्तियाँ प्राप्त हैं जिसे दो उपवर्गों में विभाजित कर अध्ययन किया गया है :

(क) नैमेष (अजमुख) सादा अंकन

(ख) आभूषित नैमेष

(क) नैमेष अजमुख सादा अंकन : राजघाट से १७ नैमेष की हस्तनिर्मित मृणाकृतियाँ प्राप्त हैं। अजमुख मानव शरीर, अजकर्ण एवं पंखाकार शीर्ष, चीरा मुख इनकी विशेषताएँ हैं।

क्रम सं० २

राजघाट, खात सं० XI, स्तर सं० ४; ए०सी०सी० नं० १०३६

आकार : ६ से०मी०

चित्र सं० २

अजमुख मानव शरीर की पूर्ण मृणाकृति जो परिष्कृत मिट्टी से हस्तनिर्मित, अच्छी पकी (लाल) है (नारायण, ए०के० एवं पी०के० अग्रवाल, १९७८ : ८५)। इस पर चुटकी से उभार कर मोटी शुक नासिका का अंकन है, गहरे चीरे द्वारा मुख प्रदर्शित है। प्रतिमा में लम्बे लटकते कान एवं सींग अंकन विहीन हैं। यह मृणमूर्ति ताराकार मृणमूर्तियों के समान ही छोटे आकार की है एवं इसके बहुत छोटे हाथ-पैरों के सिरों पर चम्मच के समान अंकित है। यह मृणमूर्ति राजघाट के काल IV (३०० से ७०० ई०) से प्राप्त है।

क्रम सं० ३

राजघाट, सतह से प्राप्त; ए०सी०सी० नं० ४०५

आकार : ९ से०मी०

चित्र सं० ३

भग्न अजमुख मृणाकृति (कमर के नीचे से भग्न) जो परिष्कृत मृदा से हस्तनिर्मित, अच्छी पकी (लाल) है (नारायण, ए०के० एवं पी०के० अग्रवाल, १९७८ : ८५)। इसका चेहरा चुटकी द्वारा गोल उभार में शुक नासिका के रूप में निर्मित है, चीरे द्वारा मुख का अंकन है, सिर पर छिद्रित पंखाकार केशविन्यास है। ठूँठदार हाथ के सिरे पर चम्मच के समान दाब है। धड़ भाग से चपटी इस प्रतिमा का चौड़ा कंधा है। चुटकी से उभार कर बना अजमुख एवं लम्बे लटकते चीरे हुए कान हैं। राजघाट उत्खनन से इसके समान (९) मृणाकृतियाँ (नारायण, ए०के० एवं पी०के० अग्रवाल, १९७८; फलक XVII, 4; XVIIIA, 1, 3-6; XVIII B, 2, 4-6) एवं ६ अपुरातात्विक संदर्भ से प्राप्त हैं।

गंगा घाटी में सादे अंकन की नैमेष मृणाकृतियाँ कुग्रहार के काल III (१००-३०० ई०) (अल्लेकर, ए०एस० एवं विजयकान्त मिश्र, १९५९ : ११०; फलक XLII १, २) खैराडीह के काल III (१०० ई०पू० से ३०० ई०) (जायसवाल विदुला, १९९१ : ३७; फलक VIII २३, २५), नरहन के काल IV (२०० ई०पू० से ३०० ई०) (सिंह पुरुषोत्तम, १९९४ : १५०; फलक XXVIII, १) एवं अहिच्छत्रा के स्ट्रेटम III (३५०-७५० ई०) (अग्रवाल वी०एस०, १९८५ : ३१-३२; फलक XVIII १२६-१२९) से प्राप्त है।

(ख) **आभूषित नैमेष** : काराणसी की तीन नैमेष मृण्मूर्तियाँ आभूषणयुक्त व सज्जित हैं। आभूषण मिट्टी की चिपकवा पट्टी, खॉच रेखाओं एवं ठप्पा वलय द्वारा निर्मित है। नैमेष (पुरुष) प्रतिमा के यह आभूषण मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त प्रस्तर पटिया पर बने नैमेष की प्रतिमा के आभूषण एवं नैमेष से जुड़े कथानक की पुष्टि करता है।

क्रम सं० ४

राजघाट, खात सं० XI, स्तर सं० ४; ए०सी०सी० नं० ७००

आकार : ९ से०मी०

चित्र सं० ४

भग्न मानव मृणाकृति का धड़ एवं अंशतः सुरक्षित शीर्ष भाग। मध्यम परिष्कृत मिट्टी से हस्तनिर्मित, लाल प्रोत चढ़ी एवं अच्छी पकी (लाल) मृण्मूर्ति (नारायण,

ए०के० एवं पी०के० अग्रवाल, १९७८ : ८५) है। इस मृणाकृति के गले में मिट्टी की पतली पट्टी चिपकाकर कण्ठाहार का अंकन है, जिसपर ठप्पा वलय द्वारा सज्जा है। चौड़ा कंधा, सपाट सीना एवं पतला पेट है। भग्न शीर्ष पर लम्बे अजकर्ण सुरक्षित हैं। इस पर ठप्पा वलय द्वारा कर्णाभूषण का अंकन है। इसी प्रकार कमर पर बाँयी तरफ अंशतः सुरक्षित पट्टी द्वारा मेखला जिस पर ठप्पा वलय द्वारा सज्जा है। यह मृणमूर्ति राजघाट के काल IV (३००-७०० ई०) से प्राप्त है। राजघाट के काल IV से इसके समान दो अन्य नैगमेष की मृणाकृतियाँ (नारायण, ए०के० एवं पी०के० अग्रवाल, १९७८; फलक XVIII, B ३, ५) प्राप्त हैं। अन्य पुरास्थलों से प्राप्त नैगमेष मृणाकृतियाँ आभूषण विहीन हैं तथापि खैराडीह के काल III (१०० ई०पू० से ३०० ई०) (जायसवाल विदुला, १९९१; फलक VIII २४, २६, २७), कुम्रहार के काल III (१००-३०० ई०) (अल्लेकर ए०एस०, १९५९ : ११०; फलक XLII ५, ७, ८) से आभूषित मृणाकृतियाँ भी प्राप्त हैं। गंगा घाटी में नैगमेष की मृणाकृतियाँ १०० ई०पू० से ७०० ई० तक प्रचलित प्रतीत होती हैं। राजघाट के उदाहरणों में आभूषणों का अंकन पश्चिम के पुरास्थलों का प्रभाव माना जा सकता है।

(स) नैगमेषी (अजमुख स्त्री) मृणमूर्तियाँ : इस वर्ग में अजमुखी स्त्री मृणाकृतियों का वर्णन है। वाराणसी से इस वर्ग की ८ मृणाकृतियाँ राजघाट (६), सारनाथ (१) एवं सराय-मोहाना (१) से प्राप्त हैं।

क्रम सं० ५

राजघाट, खात सं० XI, स्तर सं० ४; ए०सी०सी० नं० ३०९

आकार : ७ से०मी०

चित्र सं० ५

नैगमेषी का यह भग्नांश (कमर से भग्न) पोत विहीन व हस्तनिर्मित है (नारायण, ए०के० एवं पी०के० अग्रवाल, १९७८ : ९०)। मृणाकृति के चेहरे पर चुटकी से उभार कर मोटी शुकाकार नाक एवं चीरा मुख का अंकन है। कंधे तक लटकते लम्बे चीरे कान, चुटकी से उभार कर अर्धचन्द्राकार छिद्रित शीर्ष, उन्नत वक्ष एवं हाथों पर चम्मच के समान दाब का अंकन है। सीने पर मिट्टी की गुटिका चिपकाकर उरोज का अंकन है। यह मृणमूर्ति राजघाट के काल IV (३००-७०० ई०) से प्राप्त है। राजघाट उत्खनन के काल IV (३००-७०० ई०) से प्राप्त एक अन्य नैगमेषी के गले में पिन छिद्रों द्वारा कण्ठाहार का अंकन (नारायण, ए०के० एवं पी०के० अग्रवाल, १९७८, फलक XVIII, B, ९) है।

34 : श्रमण, वर्ष 67, अंक 2, अप्रैल-जून, 2016

गंगा घाटी में सज्जित नैगमेषी की मृणाकृतियाँ वैशाली के काल IV (२००-६०० ई०पू०) (सिंह, बी०पी० एवं सीताराम राय, १९६९ : १६३; फलक LII, ९), खैराडीह के काल III (१०० ई०पू० से ३०० ई०) (जायसवाल विदुला, १९९१; फलक VIII, २४, २६, २७), कुम्रहार के काल III (१००-३०० ई०) (अल्लेकर, ए०एस० एवं बी० मिश्रा, १९५९ : फलक XLII ५, ७-८) एवं पाटलिपुत्र के काल II (१५० ई०पू० से ५० ई०) (सिंह, बी०पी० एवं लाला आदित्य नारायण, १९७० : ४३; फलक XIII, A, ३) से प्राप्त हैं।

क्रम सं० ६

सारनाथ, खात सं० एवं स्तर सं० अप्राप्त; ए०सी०सी० नं० ३१२२ (सारनाथ संग्रहालय)

चित्र सं० ६

भग्न स्त्री मृणाकृति धड़ (शीर्ष एवं कमर के नीचे से भग्न) जो मध्यम परिष्कृत मिट्टी से हस्तनिर्मित, लाल पोत चढ़ी है। इसकी पहचान राजघाट की नैगमेषी मृणमूर्ति के समान है यथा नौकदार पतला गला, कंधे पर उखड़े हुए चिपकाए कान, मिट्टी की गुटिका चिपकाकर उरोज जिस पर पिन छिद्रों से स्तनाग्र का अंकन, छोटे हाथ के सिरे पर चम्मच के समान दाब है। सारनाथ से प्राप्त इस आकृति की तिथि छठी शताब्दी ई० निर्धारित है। राजघाट उत्खनन से इनके समान ५ अन्य नैगमेषी मृणमूर्तियाँ काल IV (३००-७०० ई०) (नारायण, ए०के० एवं पी०के० अग्रवाल, १९७८ : ९०; फलक XVII २; फलक XVIII, A, ६; फलक XVIII, B, ९, ७; फलक XIX, १) प्राप्त हैं एवं एक मृणमूर्ति सराय-मोहाना से प्राप्त है (सिंह, बी०पी० एवं ए०के० सिंह, २००४; फलक XIX, ८)।

गंगा घाटी में सादे अंकन की नैगमेषी (अजमुख) प्रतिमाएँ वैशाली के काल IV (३००-७०० ई०पू०) (देवकृष्ण एवं विजयकान्त मिश्र, १९६१ : ५३; फलक XII, C, ७), काल IV (२००-६०० ई०पू०) (सिन्हा, बी०पी० एवं सीताराम राय, १९६९ : १६२-१६३; फलक LII, १-९), कुम्रहार के काल III एवं IV (१०० से ३०० ई०; ३०० से ४५० ई०) (अल्लेकर, ए०एस० एवं वी० मिश्रा, १९५९ : १०९-११२; फलक XLII, 1-8, XLIII, B, 1-4), पाटलिपुत्र के काल II (१५० ई०पू० से ५०० ई०) (सिंह, बी०पी० एवं लाला आदित्य नारायण, १९७० : ४३; फलक XIII, A, १-३), खैराडीह के काल III (१०० ई०पू० से ३०० ई०) (जायसवाल विदुला, १९९१ : ३८-३९; फलक IX, २७-३०) एवं कौशाब्दी के कुषाण एवं उत्तर कुषाण काल से (शर्मा जी०आर०, १९६९ : ६५-६६; फलक XXXVI, B १-६) से प्राप्त हैं।

वाराणसी क्षेत्र में मध्य गंगा घाटी के समान नैगमेषी तथा नैगमेष मृणाकृतियाँ कुषाणकाल में बहुप्रचलित थीं। इनका उत्तर प्रचलन गुप्तकाल में भी प्रमाणित है। चिरंतन व शैलीगत वर्गों में गढ़ी यह मृणमूर्तियाँ पूजन आकृतियाँ थीं। नैगमेष मृणाकृतियों में अब स्त्री एवं पुरुष (अजमुखी) के अलावा मानवमुखी अजकर्ण की मृणाकृतियाँ भी बनने लगी थीं। मृणमूर्तियों में यज्ञोपवीत सूत्र के स्थान पर आभूषण का अंकन महत्त्वपूर्ण है। इन सभी नैगमेष आकृतियों की संख्या पूर्व की अपेक्षा अधिक (२८) है।

(द) नैगमेष मानव मुख प्रकार : नैगमेष प्रतिमाओं के इस वर्ग में हस्तनिर्मित अजमुख के स्थान पर साँचा निर्मित मानव मुख का अंकन है। परन्तु इनमें लटकते लम्बे अजकर्ण का अंकन पहले की ही भाँति है, साथ ही द्विश्रृंगी केश विन्यास एवं स्त्री पुरुष दोनों की ही प्रतिमाएँ प्राप्त हैं। ये प्रतिमाएँ राजघाट (४), रामनगर (१), सारनाथ (१) एवं सराय-मोहाना (१) से प्राप्त हैं। राजघाट के काल IV (३००-७०० ई०) में नैगमेष प्रतिमाओं में मानव मुख का अंकन प्रारम्भ होने लगा। संभवतः यह मिट्टी के लोदों पर मानव मुख का अंकन था (नारायन, ए०के० एवं पी०के० अग्रवाल, १९७८; फलक XIX १)।

क्रम सं० ७

राजघाट, खात सं० XI_B, स्तर सं० ४; ए०सी०सी० नं० ४८९

चित्र सं० ७

मानवमुखी अजकर्ण की नैगमेष मृणमूर्ति के शीर्ष एवं धड़ (बाँह एवं पैर भग्न) असमान, पके एवं साँचा निर्मित हैं। “अजकर्ण युक्त मानव मृणमूर्ति” (नारायन, ए०के० एवं पी०के० अग्रवाल, १९७८ : ९०-९१) के लम्बे चीरे हुए कान हैं। यह मृणमूर्ति राजघाट के काल IV (३०० से ७०० ई०) से प्राप्त है। राजघाट के काल IV से इसके अतिरिक्त २ अन्य प्रतिमायें (नारायन, ए०के० एवं पी०के० अग्रवाल, १९७८; फलक XIX, २.३) सराय-मोहाना से (आइ०ए०आर०, १९६७-६८; फलक XXIII Z, ३), सारनाथ (ए०सी०सी० नं० ३२७/२८, ४९९) एवं राजघाट (ए०सी०सी०नं० १८३०, २०९५) से भी प्राप्त हैं। गंगा घाटी में मानवमुखी अजकर्ण विशेषता की मानव मृणाकृतियाँ अहिच्छत्रा के स्ट्रेटम III (३५०-७५० ई०) (अग्रवाल वी०एस०, १९८५ : ३२; फलक XVIII, १३१.१३३) से कौशाम्बी के शक-पार्थियन, कुषाण एवं उत्तर कुषाण काल (शर्मा जी०आर०, १९६९ : ६०-६१; ६५-६६; फलक XXIX, B; XXXVI, B) से प्राप्त हैं। गंगा घाटी के अन्य स्थलों से तुलना करने पर इन मृणमूर्तियों की तिथि उत्तर कुषाण से गुप्त काल प्रतीत होती है।

नैगमेष मृण प्रतिमाओं के सम्बन्ध में विद्वानों ने विस्तृत व्याख्या की है (नारायण, ए०के० एवं पी०के० अग्रवाल, १९७८ : ४३, ८५-८७; अग्रवाल पी०के०, १९८५ : ३०-३१; जायसवाल विदुला, १९९१ : ४०-४५)। बकरी या भेड़ के समान पशु मुख की मानव मृणमूर्ति जिसके लम्बे लटकते कान की चीरी या छिद्रित लर है, सामान्यतः चेहरा दोनों कानों के मध्य दोहरे उभार (चुटकी से निर्मित) का शुकाकार रूप में निर्मित है। चेहरे में ठोढ़ी का अंकन एवं चीरा मुख है। अधिकांश प्रतिमाओं के हाथ एवं पैरों के सिरों पर चम्मच अथवा प्याला समान गर्त, सिर पर मिट्टी की त्रिभुजाकार पट्टी जोड़कर इसमें एक या दो छिद्र का अंकन है। ये प्रतिमाएँ ज्यादातर भग्न हैं एवं इनका चपटा शरीर, चौड़ा कंधा एवं मोटा गला निर्मित है। इन अजमुखी प्रतिमाओं की पहचान नैगमेष या हरिनेगमेषी के रूप में है। ब्राह्मण एवं जैन साहित्य में इसके अनेकों नाम मिलते हैं जैसे- नैगमेष, नैगमेय, नैजमेष, नैगमेषिन इत्यादि। इसकी कुछ प्रस्तर प्रतिमाएँ मथुरा के कुषाण काल में पहले से ज्ञात हैं। एक प्राचीन प्रस्तर पटिया जो कि मथुरा के कुषाण काल के प्राचीन जैन क्षेत्र कंकाली टीले से प्राप्त है इस पर देव का अंकन है तथा इस पर 'भगवा नेमेषी' अर्थात् भगवान् नैगमेषी लिखा है। इसमें शिशुजन्म के देवता का आह्वान का अंकन भी प्रस्तर पटिया पर दिखता है (ब्यूलर जी०, १८९३ : ३१६; चित्रं; फलक II; शर्मा आर०सी०, १९९४ : ८२-८३)। उपर्युक्त समस्त मूर्तियाँ मूलतः जैन आख्यान से सम्बन्धित हैं एवं अपने विकास क्रम को प्रस्तुत कर रही हैं।

कल्पसूत्र के अनुसार इन्द्र की आज्ञा से उनके हरिनैगमेष नामक अनुचर देव ने महावीर को गर्भ रूप में देवनन्दा की कुक्षि से निकालकर त्रिशला रानी की कुक्षि में स्थापित किया था। इस प्रकार हरिनैगमेषी का सम्बन्ध बाल रक्षा से स्थापित हुआ जान पड़ता है (जैन हीरालाल, १९७२ : ३५९-३६१)। महाभारत एवं प्राचीन आयुर्वेद संहिताओं में यह स्कन्ध देव का भाई या अन्य रूप में एवं अनेक कुमार ग्रहों का पिता, जो बालक जन्म में प्रधान होता है, के रूप में वर्णित है (नारायण, ए०के० एवं पी०के० अग्रवाल, १९७८ : ८६; अग्रवाल पी०के०, १९६६ : ३३-३४; ५०-५२)। कुछ कुषाण प्रतिमाओं में इसका सम्बन्ध मातृदेवी की प्रतिमा से है। इस देव की प्राचीनता वास्तव में पूर्व वैदिक काल से भी पूर्व जाती है जिसे ऋग्वैदिक परिशिष्ट एवं गृहसूत्र साहित्य में नेजमेषा कहा गया है (अग्रवाल पी०के०, १९६६)। इस देवता का प्रतिमाविज्ञानी विकास मथुरा की प्रस्तर प्रतिमाओं द्वारा प्रचुर मात्रा में स्पष्ट रूप से प्रमाणित होता है एवं इस प्रकार की प्रचलित पूजा-उपासना के प्रचलन का साक्ष्य स्पष्ट रूप से राजघाट उत्खनन की मूर्तियों से प्राप्त है (नारायण, ए०के० एवं पी०के० अग्रवाल, १९७८ : ८६-८७)। अजमुख चेहरे की

मानवीय मृणमूर्ति प्रथम-द्वितीय शताब्दी ई० एवं बारहवीं शताब्दी ई० के मध्य, गंगा घाटी में फैली हुई है। गंगा घाटी में इनका विस्तृत प्रयोग दिखता है। विदुला जायसवाल ने खैराडीह से प्राप्त नैगमेष/नैगमेषी मृणमूर्तियों के आधार पर इस विषय पर विस्तृत विवरण दिया है (जायसवाल विदुला, १९९१ : ४०-४५), प्राचीन साहित्य में नैगमेष या हरिनैगमेष का वर्णन मिलता है जिससे इनके प्रतिमा लक्षण, प्रकृति एवं इस देवी-देवता की पूजा पद्धति पर प्रकाश पड़ता है। नेमिनाथ चरित में कथानक है कि सत्यभामा की प्रद्युम्न सदृश पुत्र को प्राप्त करने की अभिलाषा को पूरा करने के लिए कृष्ण ने नैगमेष देव की आराधना की और उसने प्रकट होकर उन्हें हार दिया जिसके पहनने से सत्यभामा की मनोकामना पूरी हुई। इस आख्यान में नैगमेष देव का सन्तानोत्पत्ति के साथ विशेष सम्बन्ध स्थापित होता है। उक्त देव या देवी भी प्रायः समस्त हार पहने हुए हैं जो संभवतः इस कथानक के हार का प्रतीक है (जैन हीरालाल, १९७२ : ३६१)। नैगमेष मृणमूर्तियों में हार-एवं आभूषण की पुष्टि इस कथानक से की जा सकती है। वाराणसी से प्राप्त ६ नैगमेष/नैगमेषी प्रतिमाओं में हार एवं यज्ञोपवीत सूत्र का अंकन है परन्तु इनका बालकों के साथ अंकन नहीं दिखता है। परन्तु वैशाली उत्खनन से गढ़ी क्षेत्र के चतुर्थ काल से नैगमेष दम्पति तथा उनके बच्चे की भी मूर्तियाँ प्राप्त हैं जिसमें नैगमेष परिवार/दम्पति तथा शिशु नैगमेष (सिन्हा, बी०पी० एवं सीताराम राय, १९६९ : १६२-१६३; फलक LII) का अंकन है।

जैन आगम अन्तगडदसाओ (३/३६ से ३८, ४१, ४७ से ५०) में वर्णन है कि हरिनैगमेषी कृष्ण के सम्मुख प्रकट होने पर बड़ा कर्णाभूषण, मुकुट एवं कटिसूत्र पहने हुए है (दिव्यप्रभा एस०, १९८१ : ४६; जायसवाल विदुला, १९९१ : ४२)। अन्य वर्णन है कि सज्जित वस्त्र की पौशाक जो पाँच रंगीन घंटियों से सज्जित है पहने है (बर्नेट एल०डी०, १९७३ : ७०)। इसके अतिरिक्त सज्जित केशविन्यास संभवतः मुकुट है। अन्य सभी विशेषताएँ नहीं दिखती हैं जो इन मृणमूर्तियों की उपासना में प्रयोग होती हैं। इन मूर्तियों के पंखाकार केश विन्यास में एक या दो छिद्र दिखते हैं जिसकी व्याख्या नहीं हो पायी है (जायसवाल विदुला, १९९१ : ४२)। कल्पसूत्र में नैगमेष/हरिनैगमेषी की भूमिका महावीर के जन्म के समय मिलती है (जैकोबी एच०, १९६४ : १९०-१९१; २२७-२२९)। अन्तगडदसाओ की एक कथा मिलती है (जैकोबी एच०, १९६४ : १९४-१९५; २२७-२२९) जिसमें वर्णित है कि सुलसा के नवजात बालक को देवाई रानी से सफलतापूर्वक बदल दिया गया था, इस घटना में उसके खाली/धसे हाथ पर महत्व दिया गया है, जो इस संवेदना को प्रकट करता है। इससे मृणमूर्तियों में प्याले समान, धसे हाथों की तुलना

की जा सकती है। संभव है इन मृणमूर्तियों में प्याले के समान दबाव के मूल में कोई दन्तकथा अथवा प्राचीन जनश्रुति हो (जायसवाल विदुला, १९९१ : ४२-४३)। कल्पसूत्र एवं अन्तगडदसाओ में नैगमेष एवं नैगमेषी का उल्लेख है। 'हिरणशीर्ष युक्त मानव' (जैकोबी एच०, १९६४ : २४७) एवं दिव्य आकाशीय सेना का मुखिया जो हिरण शीर्ष के साथ प्रदर्शित है (बर्नेट एल०डी०, १९७३ : ७६)। साहित्य में यह पुरुष रूप में वर्णित है परन्तु मृणमूर्ति में यह स्त्री एवं पुरुष दोनों रूपों में निर्मित है। वाराणसी में नैगमेषी मृणमूर्ति में मानव मुख अजकर्ण की विशेषता भी दिखती है। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का मत है कि उपलब्ध मूर्तियों से ऐसा प्रतीत होता है कि संतान पालन में देव की अपेक्षा देवी की उपासना अधिक औचित्य रखती है। अतएव देव के स्थान पर देवी की कल्पना प्रारम्भ हुई, तत्पश्चात् अजमुख का परित्याग करके सुन्दर स्त्री का मुख इस देव-देवी को दिया गया, फिर देव-देवी दोनों ही एक साथ बालकों के साथ दिखाए गये (जैन हीरालाल, १९७२ : ३५९-३६१; जैन एन्टीक्युटी, १९३७, वाल्यूम II, ३७)। "संभव है शिशु के पालन-पोषण में बकरी के दूध के महत्त्व के कारण इस अजमुख देवता की प्रतिष्ठा हुई हो? (जैन हीरालाल, १९७२ : ३६१)। इसका सम्बन्ध स्कन्ध अग्निपुत्र से है जो नैगमेष का भाई /पिता (सोरसन एस०, १९६३ : ४९५) था, नैगमेष के अजशीर्ष का वर्णन आगे चलकर तीन देवताओं से सम्बन्धित हो गया। उदाहरण के लिए उर्वरता अग्नि की वास्तविकता का प्रधान लक्षण थी जो परिणामतः लोक कला में नैगमेष का स्थान ग्रहण करती है। अग्नि से नैगमेष के बीच परिवर्तन का कारण यद्यपि स्कन्ध को प्रकट करता है जो दोनों से सम्बन्धित है! इसमें नैगमेष मूर्तियों के लटकते कानों का अंकन बीच में गहरे खाँच द्वारा है। इसका वर्णन महाकाव्यों एवं काव्य में है। उदाहरण के लिए बकरी के दोनों कानों में आहुति डालना (या स्वर्ण पर) जो संभवतः अग्नि के लिए बनती हो (हॉपकिन्स इ०डब्ल्यू०, १९८६ : १०३; जायसवाल विदुला, १९९१ : ४३)।

प्राचीन साहित्य में 'नैगमेष' हरिनैगमेष की स्थापना दो कारणों से होती होगी। प्रथम जैन एवं हिन्दुओं द्वारा प्रजा/सन्तति हेतु विस्तृत रूप में मानी गई होगी (अग्रवाल वी०एस०, १९३७ : ७-६)। कल्पसूत्र, नेमिनाथ चरित एवं अन्तगडदसाओ में इसका उल्लेख है। दूसरा विचार, नैगमेष की उपासना का विचार बुराई एवं कमजोरी से रक्षा हेतु था (जायसवाल विदुला, १९९१ : ४३)। कुछ कुषाण प्रतिमाओं में यह मातृदेवी से सम्बन्धित है। इस देव की प्राचीनता वास्तव में उत्तरवैदिक काल से भी पीछे जाती है। ऋग्वेद परिशिष्ट एवं गृहसूत्र साहित्य में इसे नैजमेष कहा गया है (नारायण, ए०के० एवं पी०के० अग्रवाल, १९७८ : ८६)। वाराणसी से मानवमुखी-

अजकर्ण की नैगमेष एवं नैगमेषी की मृणप्रतिमाएँ प्राप्त हैं। यह प्रस्तुत करता है कि परम्परागत अजशीर्ष, 'छगाना' देव, सामान्य मानव मुख (परन्तु पशुकर्ण) के रूप में परिवर्तित हो गया एवं यह घटना निश्चय ही इसके रहस्यमय प्रतिमा विज्ञान से पूर्व ही स्थान ले चुकी होगी (नारायण, ए०के० एवं पी०के० अग्रवाल, १९७८ : ८७)। मथुरा के उत्तर कुषाण काल में अनेकों स्त्री नैगमेषी प्रस्तर प्रतिमाएँ भी प्राप्त हैं (अग्रवाल पी०के०, १९६९; फलक II, क)। इन मृण प्रतिमाओं के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि अजमुख नैगमेष का निर्माण जहाँ कुषाणकाल में हुआ वहीं गुप्तकाल तक आते-आते नैगमेष में मानव मुख का अंकन होने लगा।

सन्दर्भ

१. अग्रवाल वी०एस०, १९८५. टेराकोटा फिगरिन्स ऑफ अहिच्छत्रा, पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी।
२. नारायण, ए०के० एवं पी०के० अग्रवाल, १९७८, एक्सक्वेशन्स एट राजघाट (१९५७-५८, १९६०-६५) : टेराकोटा ह्यूमन फिगरिन्स, पार्ट IV, डिपार्टमेण्ट ऑफ एनशियण्ट इण्डियन हिस्ट्री कल्चर एण्ड आर्कियोलॉजी, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, वाराणसी।
३. सिंह, बी०पी० एवं अशोक कुमार सिंह, २००४, एक्सक्वेशन्स एट सराय-मोहाना १९६७-६८ (ए सैटेलाइट सैटेलेमेण्ट ऑफ एनशियण्ट इण्डिया, वाराणसी), भारती बुलेटिन ऑफ डिपार्टमेण्ट ऑफ एनशियण्ट इण्डियन हिस्ट्री कल्चर एण्ड आर्कियोलॉजी, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, वाल्यूम २७ : १-१२०
४. अल्तेकर ए०एस० एवं वी० मिश्रा, १९५९, रिपोर्ट ऑन कुम्हार एक्सक्वेशन्स १९५१-१९५५, के०पी० जायसवाल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पटना।
५. जायसवाल विदुला, १९९१, कुषाण क्ले आर्ट ऑफ गंगा प्लेन्स, अ केस स्टडी ऑफ ह्यूमन फार्म्स फ्राम खैराडीह, आगम कला प्रकाशन, दिल्ली।
६. सिंह पुरुषोत्तम, १९९४. एक्सक्वेशन्स एट नरहन (१९८४-८९), डिपार्टमेण्ट ऑफ एनशियण्ट इण्डियन हिस्ट्री कल्चर एण्ड आर्कियोलॉजी, बी०एच०यू०, दिल्ली।
७. सिन्हा, बी०पी० एवं सीताराम रॉय, १९६९, वैशाली एक्सक्वेशन्स १९५८-१९६२, डायरेक्टर ऑफ आर्कियोलॉजी एण्ड म्यूजियम, बिहार, पटना।
८. सिन्हा बी०पी० एवं लाला आदित्य नारायण, १९७०, पाटलिपुत्र एक्सक्वेशन १९५५-५६, पटना।
९. देवकृष्ण एवं विजयकान्त मिश्र, १९६१, वैशाली एक्सक्वेशन १९५०, वैशाली संघ, वैशाली, बिहार
१०. शर्मा जी०आर०, १९६९, एक्सक्वेशन्स एट कौशाम्बी १९४९-५०, मिमोर ऑफ आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, ७४, न्यू दिल्ली।
११. अग्रवाल वी०के०, १९८५, टेराकोटा फिगरिन्स ऑफ अहिच्छत्रा, पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी।

40 : श्रमण, वर्ष 67, अंक 2, अप्रैल-जून, 2016

१२. ब्यूलर जी०, १८८३, "स्पेसमेन्स ऑफ जैन स्कल्पचर्स फ्रॉम मथुरा" इपिग्रेफिका इण्डिका, II : ३१४, चित्र a
१३. शर्मा आर०सी०, १९९४, द स्प्लैन्डर ऑफ मथुरा आर्ट एण्ड म्यूजियम, नई दिल्ली।
१४. जैन हीरालाल, १९७५ (पुनर्मुद्रण), भारतीय संस्कृति को जैन धर्म का योगदान, मध्य प्रदेश साहित्य परिषद् व्याख्यान माला, भोपाल (प्रथम प्रकाशन १९६२)।
१५. धक्लीकर एम०के०, १९७७, मास्टरपीसेज ऑफ इण्डियन टेराकोटाज, तानापोरिवाला सन्स एण्ड कम० प्रा० लि०, बाम्बे।
१६. अग्रवाल पी०के०, १९६७, स्कन्द कार्तिकेय, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी।
१७. दिव्यप्रभा साध्वी, १९८१. अन्तकृतदशांग सूत्र (हिन्दी अनुवाद), जैन आगम ग्रन्थमाला : प्रथांक-५, श्री आगम प्रकाशन समिति, व्यावर, राजस्थान।
१८. जैकोबी एच०, १९६४ (पुनर्मुद्रित), जैनसूत्र, द आचारांगसूत्र एण्ड द कल्पसूत्र, द सैक्रेड बुक्स ऑफ द इस्ट (संपा० मेक्समूलर), मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली (प्रथम प्रकाशन १८८४)।
१९. सोरसन एस०, १९६३, महाभारत (एन इन्डक्स टू द नेम इन महाभारत इ०टी०सी०), मोतीलाल बनारसीदास, बाम्बे (प्रथम प्रकाशन १९०४)।
२०. भारत कला भवन संग्रहालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
२१. कला मण्डप संग्रहालय, ज्ञान-प्रवाह, वाराणसी।
२२. सारनाथ क्षेत्रीय संग्रहालय, सारनाथ, वाराणसी।
२३. प्रा०भा०इ० संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग संग्रहालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।



1



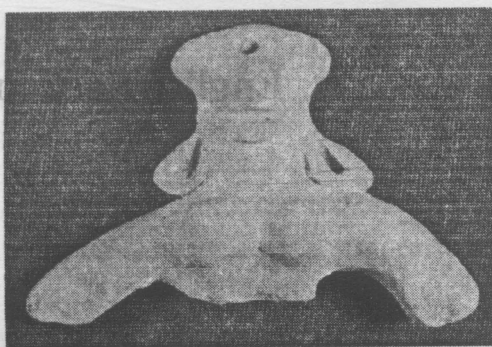
2



3



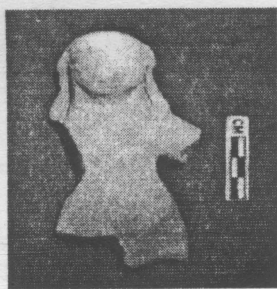
4



5



6



7

English Section

Reconsidering the Date of the Nirvāṇa of Lord Mahāvīra

Prof. Sagarmal Jain

The Jaina writers usually, after equating their dating with the Śaka era, have concluded that after a period of 605 years and 5 months of the *Nirvāṇa* of Mahāvīra, Śaka became the king.¹ On the basis of this postulate, even today, the date of the *Nirvāṇa* of Mahāvīra is held to 527 B.C. Among the modern Jaina writers, Pt. Jugal Kishor Mukhtar (1956: 26-56), of the Digambara sect, and Muni Sri Kalyana Vijaya (1966: 159), of the Śvetāmbara sect, have also held 527 B.C. to be the year of the *Vīra Nirvāṇa*. From about 7th century A.D., with a few exceptions, this date has gained recognition. In Śvetāmbara tradition, for the first time in the *Prakīrṇaka* entitled “*Titthogālī*,”² and in the Digambara tradition, for the first time in *Tiloyapaṇṇatti*,³ it is clearly mentioned that 605 years and 5 months after the *Nirvāṇa* of Mahāvīra, Śaka became king. Both the texts were composed between 600 and 700 A.D. To the best of my knowledge, none of the earlier texts ever showed the difference between the *Nirvāṇa* of Mahāvīra and the Śaka era. But this much is definite that from about 600-700 A.D., it has been a common notion that the *Nirvāṇa* of Mahāvīra took place in the year 605 before Śaka. Prior to it, in the *Sthavirāvalī* of *Kalpasūtra* and in the *Vācaka* genealogy of the *Nandīsūtra*, the reference to the hierarchy of Mahāvīra is found, but there is no mention of the chronology of the *ācāryas*: therefore, it is difficult to fix a date of the *Nirvāṇa* of Mahāvīra on the basis of these texts. In the *Kalpasūtra*⁴ only this much is mentioned that now 980 years (according to another version 993 years) have passed since the *Vīra Nirvāṇa*. This fact makes only this much clear that after 980 or 993 years of *Vīra Nirvāṇa*, Ācārya Devarddhigaṇi Kṣamāśramaṇa finally edited this last exposition of the present Canon. Similarly, in *Sthānāṅga* (7: 41), *Bhagavatī Sūtra* (9: 222-229) and *Āvaśyaka Niryukti* (778-783), along with the reference to *Nihnavas*, a reference as to after how much time of Mahāvīra’s life-time his *Nirvāṇa* took place is found. Here only there are some clues by comparing which with the external evidences of definite date, we can contemplate the date of *Nirvāṇa* of Mahāvīra.

There have been differences of opinion from the very beginning on the date of *Nirvāṇa* of Mahāvīra. Although, it has been clearly stated in *Tiloyapaṇṇatti* that 605 years and 5 months after the *Nirvāṇa* of Mahāvīra, Śaka became the king. There are four different statements found in this book, which are as follows :

I. 461 years after Vīra Jinendra attained salvation, Śaka became the king.

II. 9785 years after Vīra Bhagavāna attained salvation, Śaka became the king.

III. 14793 years after Vīra Bhagavāna attained salvation, Śaka became the king.

IV. 605 years and 5 months after Vīra Jina attained salvation, Śaka became the king.

Besides this, in *Dhavalā*,⁵ a commentary on *Ṣatkhaṇḍāgama*, there are three different statements as to after how many years of the *Nirvāṇa* of Mahāvīra, Śaka (Śālivāhana Śaka) became the king:

I. 605 years and 5 months after *Vīra Nirvāṇa*.

II. 14793 years after *Vīra Nirvāṇa*.

III. 7995 years and 5 months after *Vīra Nirvāṇa*.

In Śvetāmbara tradition there are two clear opinions as to how much time after the *Nirvāṇa* of Lord Mahāvīra Devardhi's last assembly on *Āgama* was held. According to the first opinion, it was composed 980 years after the *Vīra Nirvāṇa*, whereas according to the second it was composed 993 years after the event.

It is significant to note that in the Śvetāmbara tradition, there are two opinions regarding the date of Candragupta Maurya's accession to the throne. According to the first, he ascended the throne in the year 215 of *Vīra Nirvāṇa*. However, in *Titthogālī Paṇṇaya* only this much has been mentioned that (after *Vīra Nirvāṇa*) the region of the Mauryas started 60 years after the Pālakas and 155 years after the Nandas,⁶ whereas according to the second opinion of Hemacandra,⁷ he ascended

the throne 155 years after *Vīra Nirvāṇa*. Similarly, in *Laghupoṣālika Paṭṭāvalī* (p. 37) it is written that 155 years after *Vīra Nirvāṇa* Candragupta Maurya ascended the throne. Also, in *Nāgapuriya Tapāgaccha Paṭṭāvalī* (p. 48) it is written that 155 years after the *Vīra Nirvāṇa* Candragupta became the king, (*Vīrat 155 varṣe Candraguptonṛpah*): According to this *Paṭṭāvalī*, the reign of Mauryan dynasty ended after 278 years of *Vīra Nirvāṇa*. Now the period of 189 B.C. as the end of the Mauryan dynasty can be justified only when the *Vīra Nirvāṇa* is accepted as to be 467 B.C. It is worth mentioning here that the historians have accepted 187 B.C. to be the date of accession to the throne of Puṣyamitra. This second theory, presented by Hemacandra, is a hindrance in ascertaining the year 527 B.C. to be the year of the *Nirvāṇa* of Mahāvīra. It is clear from these discussions that there has been a controversy regarding the date of the *Nirvāṇa* of Mahāvīra even in ancient times.

Since the old internal evidences regarding the date of the *Nirvāṇa* of Mahāvīra were not strong, the Western scholars on the basis of the external evidences alone, tried to ascertain the date of the *Nirvāṇa* of Mahāvīra; and as a result many new theories came into light regarding the same. The following are the opinions of different scholars regarding the date of Mahāvīra's *Nirvāṇa*:

1. Hermann Jacobi (It is to be noted that initially Hermann Jacobi accepted the traditional date 527 B.C., but later on he changed his opinion), 476 B.C. He has accepted the reference found in the *Parīṣiṣṭa Parva* of Hemacandra to be authentic which says that 155 years after the *Vīra Nirvāṇa* Candragupta Maurya ascended the throne, and he ascertained the date of Mahāvīra's *Nirvāṇa* on the basis of this reference only.

2. J. Charpentier, 467 B.C.. He followed the opinion of Hemacandra and ascertained that the date of *Nirvāṇa* of Mahāvīra as to be 155 Years before Candragupta Maurya.

3. Pandit A. Shanti Raja Shastri, 663 B.C.. He considered the Śaka Era to be the Vikrama Era and establish the date of *Nirvāṇa* of Mahāvīra as to be 605 years before the Vikrama Era.

4. Prof. Kashi Prasad Jayaswal, 546 B.C.. He has mentioned only the two traditions in his article “*Identification of Kalkī*”. He has not ascertained the date of Mahāvīra’s *Nirvāṇa*. But at some other places he has considered 546 B.C. to be the date of Mahāvīra’s *Nirvāṇa*, adding 18 years between Vikarma’s birth and his accession to the throne (470+18), he fixes the date of Mahāvīra’s *Nirvāṇa*, as 488 years before Vikrama.

5. S.V. Venkateshwara, 437 B.C. His assumption is based on the Ananda Vikram Era. This Era came into vogue 90 years after the Vikrama Era.

6. Pandit Jugal Kishor Mukhtar, 528 B.C. On the basis of various arguments, he has confirmed the traditional theory.

7. Muni Sri Kalyana Vijaya, 528 B.C. While confirming the traditional theory, he has tried to remove the inconsistencies of the theory.

8. Prof. P.H.L. Eggermont., 252 B.C. The basis of his argument is equating the incident of *Samghabheda* of Tiṣyagupta in the Jaina tradition, which took place during the life time of Mahāvīra in 16th year of his emancipation. With the incident of *Samghabheda* and the act of drying up of the Bodhi tree by Tiṣyarakṣita in the Buddha Saṃgha, which took place during the reign of Aśoka.

9. V.A. Smith, 527 B.C., He has followed the generally accepted theory.

10. Prof. K. R. Norman, About 400 B.C.. Considering Bhadrabāhu to be Candragupta’s contemporary, he fixed the period of 5 earlier *Ācāryas* as 75 years, at an average of 15 years each, and thus fixed the date of Mahāvīra’s *Nirvāṇa* as $320+75 = 395$ B.C.

In order to determine the date of the *Nirvāṇa* of Mahāvīra, along with the Jaina literary sources we must take into account the legendary and epigraphical evidences also. We would follow the comparative method to decide which of the above-mentioned assumptions is authentic, and will give priority to the epigraphical evidences, as far as possible.

Among the contemporaries of Lord Mahāvīra, the names of Lord Buddha, Bimbisāra-Śreṇika and Ajātaśatru are well-known. The Buddhist sources give more information about them than the Jaina sources. The study of Jaina sources also does not give rise to any doubt about their contemporaneity. The Jaina *Āgamas* are mostly silent about Buddha's Life-history, but there are ample references to the contemporary presence of Mahāvīra and Buddha in the Buddhist *Tripitaka* literature. Here we shall take only two of the references. In the first reference there is a mention of the event of *Dīghanikāya*⁸ in which Ajātaśatru meets many of his contemporary religious heads. In this reference, the Chief Minister of Ajātaśatru talks about Nirgrantha Jñātrputra like this : "Master, this Nirgrantha Jñātrputra, is the master of the sect as well as the monastery, teacher of the sect, a scholar and a renowned Tīrthaṅkara, he is admired by many and respectable gentleman. He has been a long wandering mendicant (Parivrājaka) and is middle-aged". It can be derived from this statement that at the time of Ajātaśatru's accession to the throne, Mahāvīra's age must be about 50 years, because his *Nirvāṇa* is supposed to have taken place in the 22nd year of Ajātaśatru Kuṇṇika's rule. By deducting 22 years from his total age of 72 years, it is proved that at that time he was 50 years old.⁹ So far as Buddha's case is concerned, he attained his *Nirvāṇa* in the 8th year of Ajātaśatru's accession to the throne. This is the hypothesis of Buddhist writers. This hypothesis gave rise to two facts. Firstly, when Mahāvīra was 50 years old, Buddha was 72 (80-8). i.e. Buddha was 22 years older than Mahāvīra. Secondly, Mahāvīra's *Nirvāṇa* took place 14 years after Buddha's *Nirvāṇa* (22-8-14). It is worth mentioning here, that in the reference occurring in the *Dīghanikāya*,¹⁰ where Nirgrantha Jñātrputra and other five Tīrthaṅkaras have been called middle-aged, there is no mention of Gautama Buddha's age, but he must be 72 at that time because this event took place during the rule of Ajātaśatru Kuṇṇika and Buddha's *Nirvāṇa* took place in the 8th year of the rule of Ajātaśatru.

But contrary to the above-mentioned fact one finds information in the *Dīghanikāya* itself that Mahāvīra has attained *Nirvāṇa* during Buddha's life-time. The reference from the *Dīghanikāya*¹¹ is as follows:

“I heard this once that the Lord was residing in a palace built in the mango orchard of the Śākya known as *Vedhaññā* in Śākya (country).

At that time Niggaṇṭha Nātaputta (Tīrthaṅkara Mahāvīra) had recently died at Pāvā. A rift was created among the *Nirganthas* after his death. They were divided into two groups and were fighting by using arrows of bitter words at one-another - “you don't know this *Dharmavinaya* (=Dharma), I know it. How can you know this *Dharma-vinaya*? You are wrong in ascertaining, (your understanding is wrong), I am rightly ascertained. My understanding is correct. My words are meaningful and yours are meaningless. The things you should have told first you told in *topsy-turvy*. You presented your theory and withdrew, you try to save yourself from this allegation and if you have power, try to save yourself from this allegation and if you have power, try to resolve it as if a war (-slaughtering) was going on among the *Niggaṇthas*.”

The house-holder disciples of the Niggaṇṭha Nātaputta, wearing white dresses, also were getting indifferent, distressed and alienated from the *Dharma* of *Nigandu* which was not expressed properly (*dūrakhyāta*), not properly investigated (*duṣpravedita*), unable to redeem (*anairyāika*), unable to give peace (*ana-upaśama-Samvartanika*), not verified by any enlightened (*a-Samyak-sambuddh-pravedita*) without foundation = a different *stūpa* and without a shelter.”

Thus, we see that in the *Tripitaka* literature, on the one hand Mahāvīra has been described as middle-aged, on the other hand, there is information about the death of Mahāvīra during the life-time of Buddha. Since, according to the sources based on Jaina literature, Mahāvīra died at the age of 72, it is certain that both the facts cannot be true at the same time. Muni Kalyana Vijayaji¹² has called the

theory of Mahāvīra's *Nirvāṇa* during the life-time of Buddha a mistaken concept. He maintains that the incident of Mahāvīra's demise is not a reference to his real death, but to hearsay, it is also clearly mentioned in Jaina Agamic texts those 16 years before his *Nirvāṇa*, rumour of his death had spread, hearing which many Jaina Śramaṇas started shedding tears. Since the incident of the bitter-argument between Makkhaligośāla, a former disciple of Mahāvīra, and his other Śramaṇa disciples was linked with this rumour, the present reference from the *Dighanikāya* about the death of Mahāvīra during the life time of Buddha is not to be taken as that of his real death, rather it indicated to the rumour of his death by burning fever caused by *Tejoleśyā* hurled upon him by agitated and acutely jealous Makkhaligośāla after dispute.

Buddha's *Nirvāṇa* must have taken place one year and few months after the rumour about Mahāvīra's death. Therefore, Buddha must have attained *Nirvāṇa* 14 years, 5 months and 15 days before Mahāvīra's *Nirvāṇa*.

Since Buddha's *Nirvāṇa* took place in the 8th year of Ajātaśatru Kuṇika's accession to the throne, Mahāvīra's *Nirvāṇa* must have taken place in the 22nd year of his accession.¹³ Therefore, it is certain that Mahāvīra's *Nirvāṇa* took place 14 years after the *Nirvāṇa* of Buddha, The fixation of the date of Buddha's *Nirvāṇa* would definitely influence the date of Mahāvīra's *Nirvāṇa*. First of all we shall fix the date of Mahāvīra on the basis of the Jaina sources and inscriptions and then we will find out what should be the date of Buddha's *Nirvāṇa* and whether it is supported by the other sources.

While determining the date of *Nirvāṇa* of Mahāvīra, we would have to keep in our mind that the contemporaneity of Ācārya Bhadrabāhu and Sthūlibhadra with Mahāpadma Nanda and Candragupta Maurya; of Ācārya Suhasti with Samprati; of Ārya Maṅkṣu (Maṅgu), Ārya Nandila, Ārya Nāgahasti, Ārya Vṛddha and Ārya Kṛṣṇa with the period mentioned in their inscriptions and of Ārya Devarddhigaṇi Kṣamāśramaṇa with king Dhruvasena of Valabhi, is not disturbed in any way. The historians have unanimously agreed that Candragupta

ruled from 317 B.C. to 297 B.C. (Majumdar: 1952: p. 168; Tripathi; 1968 p, 139). Therefore, the same should be the period of Bhadrabāhu and Sthūlibhadra also. It is an undisputed fact that Candragupta had wrested power from the Nandas and that Sthūlibhadra was the son of Sakdāla, the minister of the last Nanda. Therefore, Sthūlibhadra must be the younger contemporary and Bhadrabāhu the older contemporary of Candragupta. This statement that Candragupta Maurya was initiated into Jaina religion, may or may not be accepted as authentic, still on the basis of the Jaina legends one must accept that both Bhadrabāhu and Sthūlibhadra were contemporary of Candragupta. The main reason behind Sthūlibhadra's renunciation could be Mahāpadma Nanda's (the last ruler of the Nanda dynasty) misbehaviour with his father and ultimately his merciless assassination.¹⁴ Moreover, Sthūlibhadra was initiated by Sambhūtivijaya and not by Bhadrabāhu. At the time of first assembly on composition of *Āgama* held at Pāṭalīputra, instead of Bhadrabāhu or Sthūlibhadra, Sambhūtivijaya was the head, because only in that particular assembly it was decided that Bhadrabāhu will make Sthūlibhadra to study the Pūrva-texts. Therefore, it seems that the first assembly was held any time during the last phase of the Nanda rule. The period of the first assembly can be accepted as before 155 years of the *Vīra Nirvāṇa* era. If we accept that both the traditional notions are correct and that Ācārya Bhadrabāhu remained Ācārya from *Vīra Nirvāṇa Saṁvat* 157 to 170 and that Candragupta Maurya was enthroned in 215 V.N., then the contemporaneity of the two is not proved. It concludes that Bhadrabāhu had already died 45 years before Candragupta Maurya's accession. On this basis Sthūlibhadra does not even remain the junior contemporary of Candragupta Maurya. Therefore we have to accept that Candragupta Maurya was on throne 155 years after *Vīra Nirvāṇa*. This date has been accepted by *Himvanta Sthavirāvalī*¹⁵ and *Parīśiṣṭa Parva*¹⁶ of Ācārya Hemacandra also. On this basis only the contemporaneity of Bhadrabāhu and Sthūlibhadra with Candragupta Maurya can also be proved. Almost all the *Paṭṭāvalī*s accept the period of Bhadrabāhu as an Ācārya, to be 156-170 V.S.¹⁷ In Digambara tradition also the

total period of the three *Kevalīs* and the five *Śrutakevalīs* has been accepted as 162 years. Since Bhadrabāhu was the last *Śrutakevalī*, according to the Digambara tradition, his year of demise must be the year 162 of the *Vīra Nirvāṇa Saṁvat*. Thus, despite the fact that there is a difference of 8 years regarding the period of demise of Bhadrabāhu as accepted by the two traditions, the contemporaneity of Bhadrabāhu and Candragupta Maurya is fully justified. Muni Sri Kalyana Vijaya (Śrī Paṭṭāvalī Parāga Saṁgraha: 1966:52; Vīra Nirvāṇa Saṁvat aura Jaina Kāla Gaṇanā: p, 137), in order to prove the contemporaneity of Bhadrabāhu and Candragupta Maurya has accepted the period of Sambhūtivijaya as an Ācārya to be 60 years at place of 8 years. In this way, while accepting the date of the *Nirvāṇa* of Mahāvira as 527 B.C., he has tried to establish the contemporaneity of Bhadrabāhu and Candragupta Maurya. But it is only his imagination (Vīra-Nirvāṇa Saṁvat aura Jaina Kāla Gaṇanā - p. 137 & Paṭṭāvalī Parāga Saṁgraha- p. 52); there is no authentic proof available. All the Śvetāmbara *Paṭṭāvalīs* accept the date of the demise of Bhadrabāhu to be the year 170 V.N.S. Also, in *Titthogālī* it has been indicated that the decay of the knowledge of the fourteen *Pūrvas* started in the year 170 V.N.S. Bhadrabāhu was only the last of the 14 *Pūrvadhara*s. Thus, according to both of the traditions - Śvetāmbara and Digambara, the date of demise of Bhadrabāhu stands as 170 and 162 of V.N.S. respectively.

On the basis of this fact, the contemporaneity of Bhadrabāhu and Sthūlibhadra with the last Nanda and Candragupta Maurya can be proved only if the date of *Nirvāṇa* of Mahāvira is accepted as 410 years before V.S. or in the year 467 B.C. The other alternatives do not prove the contemporaneity of Bhadrabāhu and Sthūlibhadra with the last king of the Nanda dynasty and Candragupta Maurya. In *Titthogālī Paṇṇayanī*¹⁸ (783-794) also the contemporaneity of Sthūlibhadra and the king Nanda has been described. Thus on the basis of these facts it appears more logical to accept the date of the *Nirvāṇa* of Mahāvira as 467 B.C. *Himvanta Sthavirāvalī* also mentions that Candragupta was enthroned in 155 years after the *Vīra Nirvāṇa* and that Vikramārka lived 410 years after the *Vīra*

Nirvāṇa.¹⁹ This also confirms the theory of accepting the date of Mahāvīra's *Nirvāṇa* to be 467 B.C.

Again, in the Jaina tradition the contemporaneity of Ārya Suhasti and the king Samprati is unanimously accepted. The historians have acknowledged the period of Samprati to be 231-221 B.C. (Tripathi: 1986; p. 139). According to the Jaina *Paṭṭāvalis*, the period of Ārya Suhasti as Yuga Pradhāna Ācārya was 245-291 V.N.S. If we base our calculation on the assumption that *Vīra Nirvāṇa* took place in 527 B.C., we will have to accept that Ārya Suhasti became the Yuga Pradhāna Ācārya in 282 B.C. and died in 236 B.C. In this way, if we consider 527 B.C. to be the year of *Vīra Nirvāṇa*, then, in no way, the contemporaneity of Ārya Suhasti and the king Samprati could be established. But, if we accept 467 B.C. to be the year of *Vīra Nirvāṇa*, then the period of Ārya Suhasti as an Ācārya starts from 222 B.C. (467-245=222), on this basis the contemporaneity is established, but the reign of Samprati extends to only one year during the Ācāryaship of Ārya Suhasti. Ārya Suhasti had come in contact with Samprati when he was a prince and the ruler of Avanti, and may be at that time Ārya Suhasti was an influential Muni in spite of not being a Yuga Pradhāna Ācārya of the *Samgha*. It is remarkable that Ārya Suhasti was initiated by Sthūlibhadra. According to the *Paṭṭāvalis*, Sthūlibhadra was initiated in 146 V.N.S. and died in 215 V.N.S. It can be derived from this fact that 9 years before Candragupta Maurya's accession, and during the last Nanda king (Nava Nanda), Ārya Sthūlibhadra had already been initiated. If, according to the *Paṭṭāvalis*, the total life of Ārya Suhasti is considered to be 100 years and his age at the time of initiation to be 30 years, then he must have been initiated in 221 V.N.S. i.e. 246 B.C. (assuming the date of *Vīra Nirvāṇa* in 467 B.C.) It does prove the contemporaneity of Ārya Suhasti with Samprati, but then, there is a difference of 6 years, if he is accepted to have been initiated by Sthūlibhadra himself because 6 years before he got initiated, in 215 V.N.S., Sthūlibhadra has already died. It is also possible that Suhasti may have got initiated at the age of 23 or 24, and not at the age of 30. Even then, it is certain that on the basis of the references made

in *Paṭṭāvalīs*, the contemporaneity of Ārya Suhasti and Samprati is possible only by accepting the date of *Vīra Nirvāṇa* as 467 B.C. This contemporaneity is not possible if the date of the Mahāvira *Nirvāṇa* is accepted as 527 B.C. or any other later date.

Thus, by accepting the date of the *Vīra Nirvāṇa* as 467 B.C. the contemporaneity of Bhadrabāhu and Sthūlibhadra with Mahāpadma Nanda and Candragupta Maurya and that of Ārya Suhasti with Samprati can be proved. All other alternatives fail to prove their contemporaneity. Therefore, in my opinion, it will be more appropriate and logical to accept 467 B.C. as the date of the *Nirvāṇa* of Mahāvira.

Now we shall consider the date of the *Nirvāṇa* of Mahāvira also on the basis of some of the inscriptions. Out of five names - Ārya Maṅgu, Ārya Nandila, Ārya Nāgahasti, Ārya Kṛṣṇa and Ārya Vṛddha mentioned in Mathura inscriptions (see Jaina, articles 41, 54, 55, 56, 57 and 63) first three are found in *Nandīsūtra Sthavirāvalī* (Gāthā: 27-29) and remaining four names are found in *Kalpasūtra*. According to the *Paṭṭāvalīs*, the period of Ārya Maṅgu as a Yuga Pradhāna Ācārya is considered to be in between 451 and 470 V.N.S. (*Vīra Nirvāṇa Saṁvat* aur Jaina Kāla Gaṇanā, p. 112). On accepting the date of the *Vīra Nirvāṇa* as 467 B.C. his period extends from 16 B.C. to 3 A.D. and if it is 527 B.C. his period extends from 76 B.C. to 57 B.C. Whereas, on the basis of the inscriptions (Jaina Śilālekha Saṁgraha article No. 54) his period stands as Śaka Saṁvat 52 (Huviska year 52), i.e. 130 A.D. In other words, while considering the period of Ārya Maṅgu as indicated by *Paṭṭāvalīs* and inscriptions there is a difference of 200 years if the date of *Vīra Nirvāṇa* is accepted as 527 B.C. and if it is 467 B.C. there is a difference of 127 years.

In several *Paṭṭāvalīs*, even the name of Ārya Maṅgu, is not mentioned. Therefore, the theories, concerning his period, based on the *Paṭṭāvalīs* are not authentic. Moreover, the only one *Paṭṭāvalī* called *Nandīsūtra Sthavirāvalī*, which mentions Ārya Maṅgu, does not indicate the teacher-taught (Guru-śiṣya) tradition. Therefore, there

are chances of the omission of certain names which has been confirmed by Muni Kalyana Vijayaji himself.²⁰ Thus it is not possible to establish the date of the Mahāvīra's *Nirvāṇa* on this basis of the inscriptional evidences related to Ārya Maṅgu because on the basis neither the traditional belief in the date of Mahāvīra's *Nirvāṇa* as 527 B.C. nor the scholars' opinion, as 467 B.C., could be proved correct. On equating the *Paṭṭāvalīs* with the inscriptions, the date of *Vīra Nirvāṇa* falls around 360 B.C. The reason of this uncertainty is the presence of various wrong conceptions regarding the period of Ārya Maṅgu.

So far as Ārya Nandila is concerned, we find the reference to his name also in the *Nandīsūtra*. In the *Nandīsūtra Sthavirāvalī*²¹ his name appears before Ārya Nāgahasti and after Ārya Maṅgu. There is an inscription of Nandika (Nandila) of the Śāka Saṃvat 32 in (the inscriptions of Mathura (see Jaina Śilālekha Saṃgraha, Vol. II, article No. 41); in another inscription of the Śāka Saṃvat 93, the name is not clear, only 'Nandī' is mentioned there. (see Jaina Śilālekha Saṃgraha. Vol. II, article No. 67). Ārya Nandila is referred to also in the *Prabandhakośa* and in some ancient *Paṭṭāvalīs* but since at no place there is any reference to his period, it is not possible to establish the date of the *Nirvāṇa* of Mahāvīra on the basis of this inscriptional evidence.

Now let us consider Nāgahasti. Usually in all the *Paṭṭāvalīs*, the date of the demise of Ārya Vajra has been considered as 584 V.N.S. After Ārya Vajra, Ārya Rakṣita remained the Yuga Pradhāna Ācārya for 13 years, Puṣyamitra for 20 years and Vajrasena for 3 years, i.e. Vajrasena died in the year 620 V.N.S. In Merutuṅga's *Vicāraśreṇī*, the period of Ārya Nāgahastī as the Yuga Pradhāna has been accepted as continuing for 69 years, i.e. Nāgahasti was the Yuga Pradhāna from 621 to 690 V.N.S.²² If Hastahasti of the Mathura inscription is Nāgahasti, then he is also referred to as the *guru* of Māghahasti in the inscription of the Śāka Saṃvat 54, which establishes him of before 131 A.D.

If we accept the date of the *Vīra Nirvāṇa* as 467 B.C., then the period of his Yuga Pradhānaship extends between 154 and 223 A.D. According to the inscriptions he had a disciple in 132 A.D. yet one can be contented by assuming that he must have initiated someone 22 years before being a Yuga Pradhāna. If we accept his life-span to be 100 years, he must have been 11 years old when he is supposed to have initiated Māghahasti. It seems almost impossible to believe that he was able to initiate somebody by his sermons at the age of 11 and that such an underage disciple was able to perform the *Mūrti-Pratiṣṭhā*. But if, on the basis of the traditional concept, we accept the *Vīra Nirvāṇa* year to be before 605 of the Śaka Era or 52 B.C., then the references made in the *Paṭṭāvalīs* tally with the inscriptional evidences. On this basis his tenure of Yuga Pradhānaship extends from 16 to 85 of the Śaka Era, Māghahasti, one of his disciples was able to perform the *Mūrti-Pratiṣṭhā* by his sermons. Although common sense would hardly accept it as logical that his Yuga Pradhānaship extended for 69 years, yet because of the fact that it considers the information given in the *Paṭṭāvalīs* to be correct, this inscriptional evidence about Nāgahasti supports the date of *Vīra Nirvāṇa* as 527 B.C.

Again, in one of the inscriptional sketches of Mathura, Ārya Kṛṣṇa with that Ārya Kṛṣṇa mentioned after Śivabhūti in *Kalpasūtra Sthavirāvalī* (last part 4:1), then his period on the basis of the *Paṭṭāvalīs* and *Viśeṣāvaśyakabhāṣya*,²³ could be established around 609 V.N.S., because as a result of the dispute over clothes between the same Ārya Kṛṣṇa and Śivabhūti the Botika, Nihnava came into existence. The period of this dispute is fixed as 609 V.N.S. If we accept the *Vīra Nirvāṇa* year to be 467, then the period of Ārya Kṛṣṇa is supposed to be as $609-467=142$ A.D. This inscriptional sketch belongs to $95+78=173$ A.D. Since Ārya Kṛṣṇa has been figured as a deity, it is natural that 20-25 years after his death, in 173 A.D., this sketch must have been made by some Ārya Arha, one of his follower disciples. In this way, this inscriptional evidence can maintain compatibility with other literary reference only when 467

B.C. is established as the year of the *Vīra Nirvāṇa*. It is not possible to reconcile it with any other alternatives.

In the Mathura inscriptions (Jaina Śilālekha Saṁgraha: article no. 56 & 59), the name of Ārya Vṛddhahasti is related with two inscriptions. One is from Śaka Era 60 (Huviska year 60) and the other from 79 of the same. According to the Christian era, these inscriptions belong to 138 and 157 A.D. respectively. If he is the Ārya Vṛddha of the *Kalpasūtra Sthavirāvalī* and the Vṛddhadeva of the *Paṭṭāvalīs* (Vividha Gacchīya Paṭṭāvalī Saṁgraha: p. 17), then according to the *Paṭṭāvalīs*, he was led to perform *Mūrti Pratiṣṭhā* in Karnataka in the year 695 V.N.S. If we accept 467 B.C. to be the year of the *Vīra Nirvāṇa*, then this period can be fixed at $695-467=228$ A.D. whereas the inscriptional evidences are from 138 and 157 A.D. But, if according to the traditional concept the date of the *Vīra Nirvāṇa* is accepted as 527 B.C. then his period is to be fixed at $695-527=168$ A.D. Therefore, on accepting 527 B.C. to be the *Vīra Nirvāṇa* year, the equation between this inscriptional evidence and the *Paṭṭāvalī* based evidence is found to be matching well. On assuming 25 years to be the average period of tenure of each Ācārya, his period should be around 625 V.N.S, because Vṛddha occupies the 25th place in *Paṭṭāvalī*. Thus his time can be fixed as $625-467=158$ A.D. which also proves the 467 B.C. as the period of *Vīra Nirvāṇa*.

The last evidence, on the basis of which the date of Mahāvīra's *Nirvāṇa* can be established, is king Dhruvasena's inscriptions and his period. According to the popular belief, after the Valabhi assembly, first time *Kalpasūtra* was recited before a congregation at Anandpur (Vaḍanagar) in order to console the grieved King Dhruvasena on his son's death.²⁴ The period of Valabhi assembly is fixed as 980-993 V.N.S. There are several inscriptions of Dhruvasena available. The period of Dhruvasena, the first is said to be from 525 to 550 A.D. (Parikh, Rasikalal: 1974:40). If this event is related to the second year of his accession i.e. 526 A.D., then it is proved that Mahāvīra's *Nirvāṇa* must have taken place in $993-526=467$ B.C.

Thus at least three of the six inscriptional evidences prove that the *Nirvāṇa* of Mahāvīra took place in 467 B.C. whereas the two evidences may prove 527 B.C. as the period of *Vīra Nirvāṇa*. But the dates based on the *Paṭṭāvalīs* could be incorrect; therefore, they cannot be an obstacle in determining the date of the *Vīra Nirvāṇa* as 467 B.C. One of these inscriptions is not helpful in fixing the date. These discrepancies are there also because the authenticity of the periods of the *Ācāryas* given in the *Paṭṭāvalī* is doubtful and today, we have no ground to remove these discrepancies. Still we derive from this discussion, that most of the textual and inscriptional evidences confirm the date of Mahāvīra's *Nirvāṇa* as 467 B.C. In that case, one will have to accept the date of the *Nirvāṇa* of Buddha to be 483 B.C., which has been accepted by most of the western scholars, and only then it will be proved that about 15 years (14 years and 5 months) after the *Nirvāṇa* of Buddha the *Nirvāṇa* of Mahāvīra took place.

References:

1. *Tiloyapaṇṇatti* 4: 1499; *Paiṇṇayasuttāim*: I part: 1984 - *Titthogālipaiṇṇayaṃ*: (623).
2. *Paiṇṇayasuttāim* : I, 1984 : *Titthogāli* 623
3. *Tiloyapaṇṇatti*, 4:1499
4. *Kalpasūtra*, *Sūtra*-147, p. 145
5. *Dhavalā*, 4: 1: 44: p. 132-133 .
6. *Paiṇṇayasuttāim* I, 1984, *Titthogāli Paiṇṇayaṃ* : 621
7. *Pariśiṣṭa Parva* : 8 339
8. *Sāmññaphalasutta*: 2: 1: 7
9. *Vīra Nirvāṇa Saṃvat aura Jaina Kāla Gaṇanā*, pp. 4-5
10. *Sāmññaphalasutta* : 2 : 2 : 8
11. *Pāsādikasutta*: 6: 1: 1
12. *īra Nirvāṇa Saṃvat aura Jaina Kāla Gaṇanā*, 1987, p. 12
13. *Ibid*, p. 4
14. *Titthogāli-paiṇṇayaṃ*: 787: *Paiṇṇaya-suttāim*, Ist part: 1984
15. Muni Kalyana Vijaya: *Vikram Era* 1987: p. 178
16. *Pariśiṣṭa Parva*, 8: 339
17. *Paṭṭāvalī Parāga Saṃgraha*, p. 166; *Vividhagacchīya Paṭṭāvalī Saṃgraha*: 1 part: 1961: pp. 15, 37, 48).
18. *Titthogāli Paiṇṇayaṃ*, 783-794

58 : श्रमण, वर्ष 67, अंक 2, अप्रैल-जून, 2016

19. *Vīra Nirvāṇa Saṃvat aura Jaina Kāla-Gaṇanā*, p. 177
20. Ibid, pp. 121 & 131
21. *Nandīsūtra Sthavirāvalī, Gāthā*, 27-29
22. *Vīra Nirvāṇa Saṃvat aura Jaina Kāla Gaṇanā*, p. 106 note
23. *Vīśeṣāvaśyakabhāṣya, Gāthā* : 2552-2553
24. *Śrī Kalpasūtra*: 147 pp. 145, Vinaya Vijaya: Commentary: p. 15-16

पार्श्वनाथ विद्यापीठ के प्राङ्गण में

REPORT ON

15 Day National Workshop on '**Prakrit Language & Literature**' organised by Parshwanath Vidyapeeth
from
30th May-13th June, 2016.

There is enormous literature in Prakrit language. Majority of the Prakrit works still remains inaccessible to the scholars of Jainology as well as to those working in other disciplines because of non-availability of Prakrit texts with their translations in other languages. For comparative and comprehensive study of Indian tradition, history, culture, literature, language, poetics, etc. knowledge of Prakrit is essential.

Parshwanath Vidyapeeth is committed to impart knowledge of Prakrit to the students and scholars interested in Indological studies.

Teaching of Prakrit generally aims to enable the participants to successfully attempt and comprehend each Prakrit words, derived from Sanskrit. In fact the pattern of such workshop is teaching Prakrit grammar through operational procedure employed in Sanskrit grammar. *Sūtras* and rules of Prakrit grammar used in the texts explained. The method adopted for learning Prakrit language drilling system. The formation of each word analyzed and rules of grammar applied in a particular word are explained. After attending this course one becomes able to cultivate the knowledge of Prakrit. The scholars working in the field of Indology will find a new area because of their access to original texts and their effort in comparative studies will get a boost. In turn, Prakrit studies will find a new bunch of scholars who can handle the Prakrit texts. Those adept in Sanskrit can grasp Prakrit very easily. They may be engaged in editing and translation of the Prakrit texts. Ultimately the base of Prakrit scholars is bound to expand, which is the need of hour. The exploration of

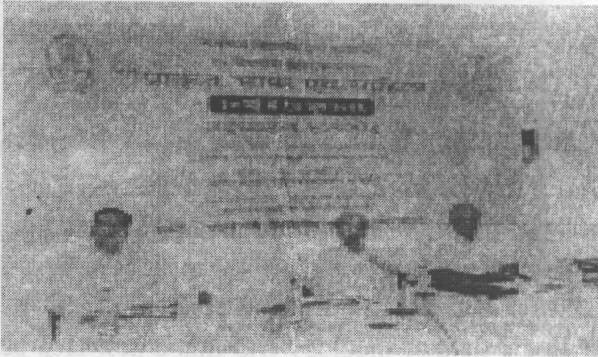
60 : श्रमण, वर्ष 67, अंक 2, अप्रैल-जून, 2016

the original sources is likely to enhance the standard of the researchers in Indology as a whole.

Keeping in view the importance of the subject Parshwanath Vidyapeeth organized a fifteen days National Workshop on Prakrit Language and Literature from 30th May to 13th June, 2016. This was the 6th workshop organized on the subject.

The Inaugural function of the workshop was held on 30th May, 2016. Prof. Yadunath Prasad Dubey, Vice-chancellor, Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi, was the Chief- Guest and Prof. Maheshwari Prasad, National Professor, National Archives of India, New Delhi, presided over this session, Shri D. R. Bhansali, renowned Industrialist & Philanthropist, Varanasi, was the guest of honour.

There were 35 participants in the workshop from the different universities, i.e. Banaras Hindu University, Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi, V. B. S. Purvanchal University, Jaunpur, M.G.I.H. University, Wardha, Gujarat University, Ahmedabad, etc.



Dignitaries on the Dias at Inaugural Function of Prakrit Workshop

In order to provide a sound background of Prakrit Language and Literature, besides regular three lectures were scheduled per day (40 lectures) on grammar, one special lecture was arranged daily by the eminent scholars of the respective subjects. Dr. S. P. Pandey, Associate Professor, PV, Varanasi, Prof. Maheshwari Prasad,

National Professor, National Archives, New Delhi, Prof. Bimalendra Kumar, Ex-Head, Deptt. of Pali and Buddhist Studies, BHU, Varanasi, Prof. Ashok Kumar Jain, Head, Deptt of Jain and Bauddha Darshan, BHU, Varanasi, Prof. Kamallesh Kumar Jain, Deptt. of Jain and Bauddha Darshan, BHU, Varanasi, Prof. Deenanath Sharma, Gujarat University, Ahmedabad, Prof. Janaki Prasad Dwivedi, Sampurnanand Sanskrit University, Prof. Prabhunath Dwivedi, Mahatma Gandhi Kashi Vidyalaya were the eminent scholars who delivered special lectures during the workshop.

Apart from the special lectures maximum classes were engaged by Prof. Deenanath Sharma, Gujarat University, Ahmedabad and Dr. Rahul Kumar Singh, PV, Varanasi.

In this workshop before valedictory session an examination was held followed by a viva-voce. On the basis of the final result five participants were awarded certificate of merit with prize.

Valedictory function of the workshop was held on 13th June, 2016. Prof. K. D. Tripathi, Honorary-advisor, Indira Gandhi National Centre for the Arts, Varanasi, Presided over the session, Prof. Kumar Pankaj, Dean, Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi, was the chief guest and Prof. Deenanath Sharma, Gujarat University, Ahmedabad, was the Guest of Honour for this session. The Workshop was completed successfully under the Directorship of Dr. S. P. Pandey, Joint Director, Parshwanath Vidyalaya, and Dr. Rahul Kumar Singh, co-ordinator, workshop.

लाला हरजसराय जैन स्मृति व्याख्यानमाला का वीथी व्याख्यान

१४ जून, २०१६ को लाला हरजसराय जैन व्याख्यानमाला के चतुर्थ पत्र के रूप में श्री. दीनानाथ शर्मा, गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद का व्याख्यान 'अर्थशास्त्री जैन आगम साहित्य' विषय पर आयोजित किया गया। अपने व्याख्यान में श्री. शर्मा ने



Prof. Sharma delivering his lecture at PV

62 : श्रमण, वर्ष 67, अंक 2, अप्रैल-जून, 2016

अर्धमागधी जैन आगम साहित्य के प्रमुख विन्दुओं पर ससन्दर्भ प्रकाश डाला। इस अवसर पर पार्श्वनाथ विद्यापीठ, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रमुख विद्वज्जन उपस्थित थे।

पार्श्वनाथ विद्यापीठ के आगामी अकादमिक आयोजन:

१. त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन- पार्श्वनाथ विद्यापीठ द्वारा २७-२९ अगस्त २०१६ को "*Assemilative and Composite Character of Jaina Art : Its Socio-Cultural Relevance in Modern Society*" विषयक एक राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया जा रहा है। संगोष्ठी के आयोजन के लिए 'भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली तथा संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा वित्तीय सहायता प्राप्त हुई है। इस संगोष्ठी में पूरे देश से पधारे जैन कला के विशिष्ट विद्वानों द्वारा तीन दिन तक जैन कला और उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक उपादेयता पर गहन चिन्तन-मनन होगा। इस संगोष्ठी के आयोजन समिति के अध्यक्ष प्रसिद्ध कलाविद् प्रो० मारुति नन्दन प्रसाद तिवारी, प्रो० इमरीटस, कला इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी हैं।

इस संगोष्ठी में सहभागिता हेतु पंजीयन शुल्क शिक्षकों के लिए रु. १५००/- तथा छात्रों के लिए रु १०००/- निर्धारित किया गया है। पंजीयन की अन्तिम तिथि १५ अगस्त, २०१६ तथा शोधपत्र-सारांश भेजने की अन्तिम तिथि ३० जुलाई, २०१६ है। विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क सूत्र :

डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय, निदेशक संगोष्ठी : 9936179817

डॉ० श्रीनेत्र पाण्डेय, समन्वयक संगोष्ठी: 8874000084

E-mail : pvpvaranasi@gmail.com

जैन जगत्

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ द्वारा विभिन्न पुरस्कारों का विज्ञापन

१. आचार्य श्री नानेश जनसेवा पुरस्कार- शिक्षा, स्वास्थ्य, अध्यात्म, आर्थिक उत्थान, पर्यावरण संरक्षण, व्यसनमुक्ति, जनसेवा इत्यादि क्षेत्रों में कीर्तिमान स्थापित करने वाला व्यक्ति/संस्था इस पुरस्कार हेतु आवेदन का पात्र होगा। आवेदन की अन्तिम तिथि १५ अगस्त, २०१६ है।

२. सेठ श्री चम्पालाल साण्ड स्मृति उच्च प्रशासनिक पुरस्कार- भारत सरकार की उच्च प्रशासनिक सेवाओं में रत जैन धर्मावलम्बी शीर्षस्थ पदाधिकारी जो विशेष ख्यातिलब्ध हैं, इसके लिए पात्र हो सकते हैं। चयनित होने पर पुरस्कार स्वरूप स्मृतिचिह्न, सम्मानपत्र एवं एक लाख रुपये की राशि प्रदान की जायेगी। नामांकन की अन्तिम तिथि १५ अगस्त, २०१६ है।

दोनों पुरस्कारों के सन्दर्भ में विस्तृत जानकारी एवं आवेदन हेतु निम्न पते पर सम्पर्क किया जा सकता है-

प्रधान कार्यालय, श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग, नोखा रोड, गंगाशहर, बीकानेर-३३४४०१, राजस्थान।

दूरभाष- 0151-2270261, 62, 2270359.

Email- abjsbkn@yahoo.co.in

Web.- www.shriabsjainsangh.com

साहित्य-सत्कार

Book Review

Book: *Origin and Development of Jaina Sects*, Dr. Arun Pratap Singh, Kala Prakashan, New Saket Colony, BHU, Varanasi, 2015, P. 186+XII, Hard Bound, Price-Rs. 550/-, ISBN- 978-93-85309-46-5.

This book discusses in detail the development of Jaina sects in space and time. The main theme of the book is to show the origin and antiquity of Jaina religion and to analyze the causes of the separation of united Jaina Church. From all available sources--literature, inscriptions, excavated materials- it has been proved that the antiquity of the Jaina religion goes as back as to the dawn of Indian civilization. It was contemporary to Vedic religion and predecessor to the religion of Śākya Munī. It throws fresh light on the dissension within the Church organization which ultimately led to the emergence of several sects and sub-sects.

The book is divided into seven chapters namely- Origin and antiquity of Jaina Religion, Nihnavas (schismatics), Schism in Jaina Saṅgha (Digambara and Śvetāmbara) Part-I, Schism in Jaina Saṅgha (Yāpanīya and Kūrcaka) Part-II, History of *Gaṇas* and *Śākhās*, *Gacchas* and Schools of Śvetāmbara Sect, Modern *Gacchas* and School of Digambara sects- with two appendixes and an exhaustive Bibliography. The two Appendixes deal at length with the lives and teachings of Pārśvanātha and Mahāvīra, the last two Jinas of present Avasarpiṇī (aeon) in historical perspective and their contributions to Jainism in particular and entire humanity as a whole.

Highlighting the importance of the book Prof. M.N.P. Tiwari writes in 'Preface' of this book, "the book by Dr. Singh for the first time presents a holistic, analytical, comparative and most updated study of origin and development of Jaina sects. He has culled the data

from literary, inscriptional and also what is reflected in visual expressions of Jaina art to make the book authentic within the frame work of historical study. It is satisfying to find that in his interpretations and analyses, he is free from sectarian and personal bias. The book undoubtedly will be useful alike to the researchers and students. The conclusions drawn in the book are valid and acceptable.”

It is hoped that this comprehensive work will be of immense use value both to the academicians and the general readers who really want to know about Jainism in historical perspective.

Dr. Rahul Kumar Singh

श्रीमद्घनेश्वरसूरिविरचितं

सुरसुंदरीचरिअं

(ग्यारहवां परिच्छेद)

पू. गणिवर्य उपाध्याय श्री विश्रुतयशविजयजीकृत
संस्कृतच्छाया, गुजराती और हिन्दी अनुवाद सहित
परामर्शदात्री

प.पू. साध्वीवर्या रत्नचूलाजी म.सा.

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी २०१६

Surasundaricariam

11th Pariccheda

We have seen that in 10th chapter after Śreṣṭhi Dhanadeva's wife gave birth to a son, queen Kamalāvātī who was present in the function, also wishes to have a child and with the blessings of Vidhuprabha given in the form of ear-rings, Kamalāvātī, the wife of king Amaraketu got pregnant. In order to fulfill the craving of pregnancy (dohada) she decided to give donations to poor and visit the whole city sitting on an elephant. All of sudden the elephant got uncontrolled and mad and took her to Padmodara pond. Sumati, the astrologer of Amaraketu proclaimed that the queen is safe and will give birth to a son but very soon she will be separated with her son. Searching her everywhere king Amaraketu found Kamalāvātī in the well. She was brought out of the well. She narrated the whole story as to how she was kidnapped by the elephant, fell down in the pond, met with a group of travelers (sārtha), met with Śrīdatta, and how on the invitation of Śrīdatta she reached Kuśāgranagara. Kamalāvātī continued that after she joined the group of travelers, somehow she was left alone in the jungle. The jungle was full of dangerous creatures, animals and hunters. She got thirsty and in search of water she reached to a pond. There she stayed at night. At midnight she felt pain (labor) in her stomach and after some time she gave birth to a child. When she was in deep sleep, she heard someone calling her. When she awoke and proceeded in the direction the voice was coming from, suddenly she felt that her son was not there in her lap and she got fainted.

Now starts the 11th chapter. After her son was kidnapped, Kamalāvātī started crying. She was surprised as to how even after having that special jewel (maṇi) given by Vidhuprabha with her, any demon succeeded to separate her son from her lap. Then suddenly there appeared an old lady monk having *valkala* and *kamaṇḍalu* in her hand. She came to Kamalāvātī and asked her how she came to this

jungle and why she is crying. She consoled Kamalāvati not to be grieved as all that happened was due to fruition of bad *karmas* performed in previous birth. She took Kamalāvati to her Āśrama and looked after her very well. The lady monk introduced Kamalāvati with the Kulapati (the chief) of the Āśrama. Kamalāvati asked Kulapati that who kidnapped her son? Is he alive or dead? Kulapati told her that your enemy of previous birth is behind this incident. He wanted to kill your son but suddenly a Vidyādhara came there with his wife and saved your son. The Vidyādhara took your son with him. The Kulapati continued that your son will be looked after by that Vidyādhara and in his young age he will meet you in Hastināpura.

Knowing that her son is safe, she became happy and lived there in Āśrama for several years serving the people. After sometime there appeared a prince who was kidnapped by a horse. He was welcomed by the inhabitants of Āśrama and met to Kulapati. Kulapati asked him about his identity. Then the young man told that he is Suratha, the son of the King of Siddhārthapura and his queen Kanakavati. After his father died of Tuberculosis, he was enthroned as a King of Siddhārthapura. His elder brother did not tolerate it and after learning the Nabhogāminī Vidyā by a Vidyādhara, he defeated him in war and succeeded to get his Kingdom back. Then with his mother, he shifted to Champānagarī. Today in jungle, a group of travelers was looted by his people along with their few horses. When he was riding on one horse, the horse kidnapped him suddenly and brought him to this Āśrama. Kulapati introduced Kamalāvati with Suratha as queen of King Amaraketu and requested him to drop her to her kingdom Hastināpur. Kamalāvati though not willing to go with a stranger, left Āśrama for Hastināpura with Suratha. In the way Suratha started to come close to Kamalāvati and offered her some beautiful ornaments. Kamalāvati recognized those ornaments and asked Suratha as to where from he got those ornaments. Suratha told that a few days back a group of travelers going towards Kuśāgranagara were looted and these ornaments were obtained. She told that all these ornaments are her which were given to her by

Śrīdatta merchant. Surataha, who was having bad intention for Kamalāvati, tried to make her happy by all means but failed. Once he proposed Kamlāvati to fulfill his desire. Kamalāvati, somehow managed to escape from Suratha but at night in the way she fell down in a well. She stayed there in the well for four days. When she saw the persons sent by Amaraketu in her search, she got relaxed. Hearing the story of Kamalāvati, Amaraketu became sad and consoled her saying that it is all result of our good *karmas* and once again we met. The king Amaraketu returned Hastināpura with queen Kamalāvati and a big function was organized there in their welcome.

Thousands of years elapsed happily. Once, when Amaraketu was sitting in his assembly, the gardener Samantabhadra came there and informed him that he has seen a beautiful young lady in the garden lying unconscious in between the trees. After he sprinkled water on her face, she got-up. Samantabhadra told that he started thinking that is it the same lady which was proclaimed by the astrologer Sumati that when a young lady will fall down in Sukumākara garden, then the Amaraketu will be able to meet his son. Then he handed over that beautiful lady to his wife and came here to inform the king. The king Amaraketu became glad to know the possibility of meeting with his son soon. Then the lady was brought to Amaraketu. The king asked her who she is and how she fell down in the garden?

She told that in the Bharata Kṣetra of Jambūdvīpa, there is a city Kuśāgranagara where the King Naravāhana is living with his wife Ratnavati. She is Sursundari, the daughter of king Naravāhana. Due to fruition of any bad *karma*, she was kidnapped by someone. The queen Kamalāvati consoled her not to worry about as the king is like her father. Kamalāvati realized that Surasundari was not happy there and her behavior was not normal. She ordered her maid servant Hansika to know about Surasundari. After repeated request the Surasundari told that she is daughter of King Naravāhana who somehow became friend of Bhānuvega, the son of Citrabhānu of Kunjarāvarta near Vaitāḍhya mountain. Bhānuvega, in order to make the friendship more strong and permanent married her sister Ratnavati

with the king Naravāhana. Very soon Ratnavatī became the head of all the queens. On her birth her father organized a big function. Very soon she became master of many vidāys like- conversation, drama, music, handicraft, Veena, Songs, cookery, grammar, logic etc. When she became young her father got worried about her marriage. Once when she visited garden with her friends she saw there a beautiful daughter of Vidyādhara. She was trying to fly in the sky by raising her hands but was not getting to do so. She went to her and asked who she is and what she was doing? She told me that she is Priyamvadā, daughter of Citravega and Bandhudattā. Bandhudattā is one of two sisters - Bandhudattā and Ratnavatī of king Bhānuvega of Kunjarāvarta, near the city Ratnasanchaya situated in southern range of Vaitādhya Mountain. Her father has one more queen Kanakamālā who has a son Makaraketu. She love very much to Makaraktu. Her father has initiated him in some special *vidyās* and he has gone to any lonely place for accomplishment of those *vidyās*. With her father's permission she came to meet him but fell down in this garden. She had knowledge of the art of flying but due to missing its one part, she was unable to fly. Then she asked her to tell the first half of the *vidyā* so that she could remember the missing portion. She did the same and Surasundarī got remembered the missing part. She wanted to know about me. Then she told her about her details. She invited Priyamvadā to her house. She was very eager to meet Makaraketu and requested her not to stop her by going. Then she asked Priyamvadā to show the portrait which she was carrying with her. When she showed the portrait she got fainted. Then Basantikā asked her as to whose portrait is this? Priyamvadā replied that he is my brave and handsome brother Amaraketu. Surasundarī told that if your brother is so handsome and brave she should meet him. Then Priyamvadā consoled Surasundarī that after the accomplishment of the said *vidyā*, she may meet to Amaraketu and went back to her home. Surasundarī also returned to her home. Here ends the story of *Surasundaricariām*, chapter 11.

श्रीमद्धनेश्वरसूरिविरचितं

सुरसुंदरीचरिअं

ग्यारहवाँ परिच्छेदः

गाहा :-

अह लब्ध-चेयणा हं मुच्छा-विरहम्मि गरुय-सोगिल्ला ।
निय-हिययं कुट्टिंती पलविउमेवं समाढत्ता ॥१॥

संस्कृत छाया :-

अथ लब्धचेतनाऽहं, मूर्च्छाविरहे गुरुशोकवती ।
निजहृदयं कुट्टयन्ती, प्रलपितुमेवं समारब्धा ॥१॥

गुजराती अनुवाद :-

कमलावती विलाप- हवे मूर्च्छा दूर थये छते प्राप्त थयेल चैतन्यवाली,
भारे शोकयुक्त हुं पोताना हृदयने कुट्टती आ प्रमाणे प्रलाप करवा लागी.

हिन्दी अनुवाद :-

कमलावती विलाप-

मूर्च्छा दूर होने के बाद होश में आई शोकयुक्त मैं अपने हृदय को पीटती
विलाप करने लगी।

गाहा :-

हा! निहण्ण केणवि अडवी-पडियाए दुक्ख-तवियाए ।
तक्खणमेत्तुप्पन्नो पुत्तो हरिओ अहन्नाए ॥२॥

संस्कृत छाया :-

हा ! निर्दयेन केनाऽपि अटवीपतिताया दुःखतप्तायाः ।
तत्क्षणं मात्रोत्पन्नः पुत्रो हतोऽधन्यायाः ॥२॥

गुजराती अनुवाद :-

हा दैव! अटवीमां आवी पडेली, दुःख थी दुःखियारी अधन्या अेवी
माटा, जातमात्र ते ज क्षणे उत्पन्न थयेल पुत्रनु निर्दय सवा कोइए अपहरण
कर्युं।

हिन्दी अनुवाद :-

हा दैव! जंगल में आ पड़ी अधन्य दुखियारी के उसी क्षण उत्पन्न हुए पुत्र का किसी निर्दयी ने अपहरण कर लिया।

गाहा :-

किल पुत्तयस्स वयणं पिच्छिस्समहं पभाय-समयम्मि ।
नवरं हयास-विहिणा एयं मह अन्नहा विहियं ॥३॥

संस्कृत छाया :-

किल पुत्रस्य वदनं द्रक्ष्याम्यहं प्रभातसमये ।
नवरं हताशविधिनैतन्ममान्यथा विहितम् ॥३॥

गुजराती अनुवाद :-

सवाटे हूं पुत्रनुं मुख जोइश 'खटे-खट'! आवी माटी आशा, हताश विधिये अन्यथा करी।'

हिन्दी अनुवाद :-

सवरे मैं अपने पुत्र का मुख अवश्य देखूंगी, ऐसी मेरी आशा थी किन्तु विधि ने अन्यथा कर दिया।

गाहा :-

अडवि-पवेसाईयं दुक्खं दारुण दूसहं देव्व! ।
किं अज्जवि न हु तुट्ठो अवहरिओ जेण मह पुत्तो? ॥४॥

संस्कृत छाया :-

अटवीप्रवेशादिकं दुःखं दत्त्वा दुःसहं दैव ? ।
किं अद्यापि न खलु तुष्टोऽपहतो येन मम पुत्रः? ॥४॥

गुजराती अनुवाद :-

हे भाग्य! अटवी प्रवेशादिक दारुण दुःख दइने तने हजु पण शुं संतोष न थयो के जेथी मारा पुत्रनुं अपहरण कर्युं?

हिन्दी अनुवाद :-

ऐ भाग्य! जंगल-प्रवेश जैसा दारुण दुःख देने पर भी क्या तुम्हें सन्तोष नहीं हुआ जो तुमने मेरे पुत्र का अपहरण भी कर लिया?

गाहा :-

वण-देवयाओ! तुम्हं सरणेम्मि समागयाए मह पुत्तो ।

हरिओ, ता किं जुज्जइ एत्थवि वेहा करेउं जे? ॥५॥

संस्कृत छाया :-

वनदेवता: ! युष्माकं शरणे समागताया मम पुत्र: ।

हतस्तरि किं युज्यतेऽत्रापि वेधा: कर्तुं यद्? ॥५॥

गुजराती अनुवाद :-

हे वनदेवता! तमारा शरणे आवेली अेवी मारो पुत्र अपहरण करायो, तो पछी अहीं विधाता पण शुं करीं शके?

हिन्दी अनुवाद :-

हे वन देवता! तुम्हारे शरण में आने पर भी मेरे पुत्र का अपहरण हो गया, तो विधाता भी क्या कर सकता है?

गाहा :-

हा पुत्त! कहमरण्णे मुक्का हं सरण-वज्जिया तुमए ।

हा! कहमुच्छंग-गओ सहसा अहंसणीभूओ? ॥६॥

संस्कृत छाया :-

हा पुत्र ! कथमरण्ये मुक्ताऽहं शरणवर्जिता त्वया ।

हा कथमुत्सङ्गतः, सहसाऽदर्शनीभूतः? ॥६॥

गुजराती अनुवाद :-

हा! पुत्र! अरण्यमां शरण रहित हुं ताचा वडे केम मूकाई? मारा खोळांमां रहेलो तुं सकासक अदृश्य केम थइ गयो?

हिन्दी अनुवाद :-

हा पुत्र! जंगल में शरणरहित मैं तुम्हारे द्वारा कैसे बनी? मेरी गोद में तुम थे, एकाएक कैसे अदृश्य हो गए?

गाहा :-

नूणं निट्ठुर-रूवं सहं सोऊण जस्स पडिबुद्धा ।

तेणं चिय अवहरिओ पिसाय-रूवेण केणावि ॥७॥

संस्कृत छाया :-

नूनं निष्ठुररूपं शब्दं श्रुत्वा यस्य प्रतिबुद्धाः ।

तेनैवापहतः, पिशाचरूपेण केनापि ॥७॥

गुजराती अनुवाद :-

जरूर, जेना निष्ठुरतायुक्त शब्द सांभळी ने हुं जागी, ते ज कोई पिशाचे तेनु अपहरण कर्युं हरो.

हिन्दी अनुवाद :-

निश्चय ही जिसके शब्द सुनकर मैं जगी थी, उसी पिशाच ने तुम्हारा अपहरण किया होगा।

गाहा :-

जस्स पभावाओ तथा सहसा गयणाओ गय-वरो पडिओ ।

सोवि मणी अकयत्थो जाओ मह मंद-भायाए ॥८॥

संस्कृत छाया :-

यस्य प्रभावात् तदा, गगनाद् गजवरः पतितः ।

सोऽपि मणिरकृतार्थो, जातो मम मन्दभागायाः ॥८॥

गुजराती अनुवाद :-

जेना प्रभावथी तरत ज आकाशमांथी हाथी नीचे पडयो, ते दिव्य मणि पण मंद भाग्यवाळी मारा माटे असफळ (असमर्थ) थयो।

हिन्दी अनुवाद :-

जिसके प्रभाव से तुरन्त हाथी आकाश से नीचे गिर पड़ा वह दिव्य मणि भी मुझ मंद भाग्यवाली के लिए असफल हो गयी है।

गाहा :-

जं कंठ-निबद्धेवि हु तम्मी अंक-ट्टिओवि हा पुत्त ! ।

हरिओ निक्करुणेणं केणावि अदिस्स-रूवेण ॥९॥

संस्कृत छाया :-

यत् कण्ठनिबद्धेऽपि खलु, तस्मिन्नङ्गस्थितोऽपि हा पुत्र ! ।

हतो निष्करुणेन, केनाऽप्यदृश्यरूपेण ॥९॥

गुजराती अनुवाद :-

ते मणि कंठमां चांथेलो होवा छतां पण, हे पुत्र! खोळांमां रहेळा तारुं
निर्दय खा कोइ पिशाचे अपहरण कर्युं!

हिन्दी अनुवाद :-

उस मणि को कंठ में बंधे रहने पर भी हे पुत्र! मेरी गोद से किसी निर्दयी
पिशाच ने अपहरण कर लिया।

गाहा :-

एमाइ बहु-विगप्यं पलवंतीए तहिं सुदीणाए ।

मददुख-दुखिया इव खीणा रयणीवि सहसति ॥१०॥

संस्कृत छाया :-

एवमादि बहुविकल्पं प्रलपन्त्यास्तत्र सुदीनायाः ।

मददुःखदुःखितेव, क्षीणा रजन्यपि सहसेति ॥१०॥

गुजराती अनुवाद :-

आ प्रमाणे दीनमुखी थईने बहु विलाप करती होती तेतलामां जाणे माटा
दुःख थी दुःखी थयेली होय तेम रात्रि पण अकस्मात् क्षीण थई गई...

हिन्दी अनुवाद :-

इस प्रकार दीनमुखी होकर विलाप कर रही थी तभी रात्रि भी क्षीण हो गयी,
जैसे मेरे दुःख से वह भी दुःखी हो गयी हो।

गाहा :-

अइकरुणं कंदंति ददुं व ममं ससोय-वयणिल्ला ।

निवडंत-थूल-तारय-अंसूहिं व रुयइ नह-लच्छी ॥११॥

संस्कृत छाया :-

अतिकरुणं क्रन्दन्तीं, दृष्ट्वेव मां सशोकवदना ।

निपतत्स्थूलतारकाश्रुभिरिव रोदिति नभोलक्ष्मीः ॥११॥

गुजराती अनुवाद :-

अतिकरुण स्वरे मने आकंदन करती जोइने शोकातुर मुखवाळी
आकाशलक्ष्मी खरी पडता मोटा ताराओ रूपी अश्रुओ वडे जाणे रोवा लागी।

हिन्दी अनुवाद :-

अति करुण स्वर में मुझे रोता देखकर शोकातुर मुखवाली आकाश लक्ष्मी गिरते हुए तारों की भाँति आँसुओं से युक्त रोने लगी।

गाहा :-

एत्थंतरम्मि सूरु सुयावहारय-निहालणत्थं व ।

नासिय-घणंघयारो आरूढो उदयगिरि-सिहरं ॥१२॥

संस्कृत छाया :-

अत्रान्तरे सूर्यः, सुताऽपहारनिभालनार्थमिव ।

नाशितघनान्धकार, आरूढः उदयगिरिशिखरम् ॥१२॥

गुजराती अनुवाद :-

सटलाभां नाश कर्यो छे गाढ अंधकार जेणे सवो सूर्य पण पुत्रना अपहरण करनारने जाणे शोधवा माटे उदयाचलना शिखर उपर आरूढ थयो।

हिन्दी अनुवाद :-

इतने में घने अंधकार का नाश करने वाला सूर्य भी उदयाचल के शिखर पर चढ़ आया जैसे वह हमारे पुत्र का अपहरण करनेवाले की तलाश कर रहा हो।

गाहा :-

अह अब्द-पहरमेत्ते दियहे अइदुक्खिया अहं तत्थ ।

अइकरुणं कंदंती इओ तओ जाव वियरामि ॥१३॥

संस्कृत छाया :-

अथार्धप्रहरमात्रे, दिवसेऽतिदुःखिताऽहं तत्र ।

अतिकरुणं क्रन्दन्तीतस्ततो यावद् विचरामि ॥१३॥

गुजराती अनुवाद :-

तापसीनुं आगमन-

हवे अर्ध प्रहट (अंदाज चाट घडी) दिवस थयो सटले अत्यन्त दुःखी हुं ते अटवीमां अति करुण स्वटे रुदन करती आम् तेम् परिश्रमण करती हती.

हिन्दी अनुवाद :-

अंदाजन दिन के चार पहर बीत गये थे, पर मैं उस जंगल में अत्यन्त दुःखी होकर अत्यन्त करुण स्वर में रोती हुई इधर-उधर घूमती रही।

तपस्वीनी का आगमन-

गाथा :-

ताव कमंडलु-हत्था मिउ-वक्कल-वसण-धारिणी तत्थ ।

परिणय-वया पसन्ना समागया तावसी एगा ॥१४॥

संस्कृत छाया :-

तावत् कमण्डलुहस्ता मृदुवल्कलवसनधारिणी तत्र ।

परिणतवयाः प्रसन्ना समागता तापस्येका ॥१४॥ युग्मम्॥

गुजराती अनुवाद :-

तेटलामां हाथमां कमंडल तथा सुकोमल वल्कलना वस्त्रो ने धारण करेली, वृद्धा छतां प्रसन्न सवी सक तापसी त्यां आवी!

हिन्दी अनुवाद :-

इतने में हाथ में कमंडल और कोमल वल्कल रूपी वस्त्र को धारण करने वाली एक तपस्विनी आई जो वृद्धा होकर भी प्रसन्न थी।

गाथा :-

ददुं ममं रुयतिं विविह-पलावेहिं तत्थ वण-गहणे ।

संजाय-गरुय-करुणा समागया मज्झ पासम्मि ॥१५॥

संस्कृत छाया :-

छद्वा मां रुदन्तीं विविधप्रलापैस्तत्र वनगहने ।

सञ्जातगुरुकरुणा समागता मम पार्श्वे ॥१५॥

गुजराती अनुवाद :-

त्यां भयंकट अटवीमां विविध प्रकारना विलापो वडे मने रडती जोडने उत्पन्न थयेली भाटे करुणा वाळी ते माटी पास्ये आवी.

हिन्दी अनुवाद :-

उस भयंकर जंगल में विभिन्न प्रकार से विलाप करती हुई मुझे देखकर उत्पन्न करुणावाली वह मेरे पास आई।

गाहा :-

मधुर-वयणेण तीए आपुढ्ठा सुयणु! कीस तं रुयसि ।
कत्तो समागया इह भीसण-रत्नम्मि इक्कल्ला? ॥१६॥

संस्कृत छाया :-

मधुरवचनेन तयाऽऽपृष्टा सुतनो! कस्मात् त्वं रोदिषि?
कुतस्समागतेह भीषणारण्ये एकाकिनी ॥१६॥

गुजराती अनुवाद :-

मधुर वचनं बड़े तापसीए पूछ्युं हे सुतनु! तुं शा माटे रुदन करे
छे? अने आ भयंकए अटवीमां सकाकी तुं क्यां थी आवी?

हिन्दी अनुवाद :-

मधुरभाषी तपस्विनी ने पूछा हे बेटी तुम क्यों रो रही हो? और इस भयंकर
जंगल में तुम अकेली कहाँ से आई?

गाहा :-

काउं तीइ प्रणामं तत्तो वियलंत-अंसुयाए मए ।
कुंजर-हरणाईओ सिद्धो सव्वोवि वुत्तंतो ॥१७॥

संस्कृत छाया :-

कृत्वा तस्यै प्रणामं ततो विगलदश्रुकया मया ।
कुञ्जरहरणादिकः शिष्टः सर्वोऽपि वृत्तान्तः ॥१७॥

गुजराती अनुवाद :-

तेने प्रणाम कचीने, वहेता अश्रुप्रवाहवाली में हाथी वड़े अपहरण आदि
समस्त वृत्तांत कह्यो।

हिन्दी अनुवाद :-

उस तपस्विनी को प्रणाम कर मैंने बहते हुए आसुओं सहित हाथी के द्वारा
किए अपहरण के वृत्तान्त को सुनाया।

गाहा :-

अह तावसीए भणियं इमस्स जोगा न होसि तं सुयणु! ।
तहवि हु किमित्थ कीरइ स-कम्म-वसगम्मि जिय-लोए? ॥१८॥

संस्कृत छाया :-

अथ तापस्या भणितमस्य, योग्या न भवसि त्वं सुतनो ! ।

तथापि खलु किमत्र क्रियते, स्वकर्मवशके जीवलोके ? ॥१८॥

गुजराती अनुवाद :-

त्याटे तापसीए कह्यु हे सुतनु! आवा दारुण दुःख ने योग्य तुं नथी, परंतु पोताना कर्मने वश खा आ जीवलोकमां आपणे शु कटी शकीए?

हिन्दी अनुवाद :-

तब तपस्विनी ने कहा हे बेटे! तू इस दारुण दुःख के योग्य नहीं हो। किन्तु अपने कर्मों के अधीन हम इस जीवलोक में क्या कर सकते हैं?

गाहा :-

सुंदरि! कम्म-वसाणं सत्ताणं इह भवे वसंताणं ।

एवंविह-दुक्खाइं हवंति जं एत्थ च हु चोज्जं ॥१९॥

संस्कृत छाया :-

सुन्दरि ! कर्मवशानां सत्त्वानामिह भवे वसताम् ।

एवंविधदुःखानि भवन्ति यदत्र न खलु चोद्यम् ॥१९॥

गुजराती अनुवाद :-

हे सुंदरी! संसारमां परिभ्रमण करतां कर्मने वश खा प्राणीओने आवा प्रकारना दुःखो आवी पड़े छे तेमां कांइज आश्चर्य नथी।

हिन्दी अनुवाद :-

हे सुन्दरी! इस संसार में परिभ्रमण करते कर्म के अधीन ऐसे प्राणियों को इस प्रकार के दुःख आ पड़ते हैं, इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

गाहा :-

जं किंचि असुह-कम्मं अन्न-भवे संचियं तुमे आसि ।

तस्स विवागाओ इमं समागयं सुयणु! गुरु-वसणं ॥२०॥

संस्कृत छाया :-

यत् किञ्चिदशुभकर्माऽन्यभवे सञ्चितं त्वयासीत् ।

तस्य विपाकादिदं समागतं सुतनो ! गुरुव्यसनम् ॥२०॥

गुजराती अनुवाद :-

परंतु हे सुभगे! पूर्वमां जे कांई अशुभ कर्म कर्युं हशे, तेना परिणाम थी आ मोटुं संकट आवी पड्युं छे।

हिन्दी अनुवाद :-

परन्तु हे सुन्दरी! पूर्व में जो कोई अशुभ कार्य तुमने किया था उसी के परिणामस्वरूप यह भारी दुःख आया है।

गाहा :-

ता अन्न-भव -विबत्ते दुक्खम्मि समागयम्मि को सोगो!।

किं वावि विलविणं सरीरायास-भूणं? ॥२१॥

संस्कृत छाया :-

तस्मादन्यभवार्जिते दुःखे समागते कः शोकः? ।

किं वापि विलपितेन, शरीरायासभूतेन ? ॥२१॥

गुजराती अनुवाद :-

तेथी अन्य भवमां उपार्जन करेल दुःखनी प्राप्तिमां शोक करवो शा कामनो? तथा शरीरने पीड़ा थाय तेवा विलाप वडे शुं?

हिन्दी अनुवाद :-

इसलिए दूसरे जन्म में उपार्जित दुःख होने से इसमें शोक करने का कोई काम नहीं और शरीर को पीड़ा हो, ऐसा विलाप करने से क्या फायदा?।

गाहा :-

एत्तो उ समासन्ने अच्छइ अम्हाण आसमो रम्मो ।

आगच्छ सुयणु! अणुचियमेयं ठाणं जओ तुज्ज ॥२२॥

संस्कृत छाया :-

इतस्तु समासन्ने आस्तेऽस्माकमाश्रमो रम्यः ।

आगच्छ सुतनो ! अनुचितमेतत्स्थानं यतस्तव ॥२२॥

गुजराती अनुवाद :-

अहीथी अमासो मनोहट आश्रम नजीक ज छे. हे सुतनु! त्यां तु आव, कारण के अहीं ताहटे रहेवुं अनुचित छे!

हिन्दी अनुवाद :-

यहाँ से नजदीक ही हमारा मनोहर आश्रम है। हे बेटी! तुम वहीं चलो।
क्योंकि तुम्हारा यहाँ रहना उचित नहीं है।

गाहा :-

वायङ् सीयल-पवणो एत्थ ओ तं अभिणव-पसूया सि ।

सुकुमाल-सरीराए मा होज्ज विरुवयं किञ्चित् ॥२३॥

संस्कृत छाया :-

वाति शीतलपवनोऽत्र ओ ! त्वमभिनवप्रसूताऽसि ।

सुकुमारशरीराया मा भवेद् विरूपकं किञ्चित् ॥२३॥

गुजराती अनुवाद :-

वळी अहीं बहु ठंडे पवन वायु छे, अने हमणा ज ताटी प्रसूति थई
छे. जेथी तारु शरीर सुकोमल होवाथी कांइ अनुचित न थाय।

हिन्दी अनुवाद :-

इसके अलावा यहाँ बहुत ठंडी हवा बह रही है और अभी तुरन्त तुम्हारी
प्रसूति हुई है। तुम चलो ताकि तुम्हारा शरीर कोमल होने से कहीं कुछ अनुचित
न हो जाय।

गाहा :-

इय भणिय तावसीए नीया हं आसमम्मि रमम्मि ।

पडिजगिगया य सम्मं निष्कारण-वच्छलत्तेण ॥२४॥

संस्कृत छाया :-

इति भणित्वा तापस्या नीताऽहं आश्रमे रम्ये ।

प्रतिजागरिता च सम्यग्, निष्कारणवत्सलत्वेन ॥२४॥

गुजराती अनुवाद :-

रम कहिने तापसी मने पोताना आश्रममां लइ गइ, अने निष्कारण
वात्सल्यताथी तेणीस माटी सारी सारसंभाळ करी।

हिन्दी अनुवाद :-

ऐसा कहकर वह तपस्विनी मुझे अपने आश्रम में ले गयी और बिना किसी
स्वार्थ के वात्सल्यपूर्वक उसने हमारी साज-संभाल की।

गाहा :-

अह कइवय-दिवसेहिं संजाया सत्थ-देहिया मणयं ।

अन्नम्मि दिणे नीया तीए हं कुलवइ-समीवे ॥२५॥

संस्कृत छाया :-

अथ कतिपयदिवसैः सञ्जाता स्वस्थदेहिका मनाक् ।

अन्यस्मिन् दिने नीता, तथाऽहं कुलपतिसमीपे ॥२५॥

गुजराती अनुवाद :-

हवे केटलाक दिवसो बाद मारुं शरीर थोडुं स्वस्थ थयुं-पछी कोईक
सक दिवसे ते तापसी मने कुलपति पासे लइ गइ.

हिन्दी अनुवाद :-

कितने दिनों बाद मेरा शरीर थोड़ा स्वस्थ हुआ। कुछ दिनों बाद वह तपस्विनी
मुझे अपने कुलपति के पास ले गयी।

गाहा :-

तीएवि पुव्व-भणिओ वुत्तंतो साहिओ कुलवइस्स ।

करुणा-परेण तेणवि अणुसट्ठा महुर-वयणेहिं ॥२६॥

संस्कृत छाया :-

तथाऽपि पूर्वभणितो वृत्तान्तः कथितः कुलपतेः ।

करुणापरेण तेनापि, अनुशिष्टा मधुरवचनैः ॥२६॥

गुजराती अनुवाद :-

कुलपति नो उपदेश

तापसीए पूर्वोक्त वृत्तांत कुलपतिने जणाव्यो. हवे करुणाभां तत्पर सवा
ते कुलपतिए मधुए वचनो वडे मने समजाव्युं.

हिन्दी अनुवाद :-

कुलपति का उपदेश-

तपस्वी ने मेरा सारा वृत्तान्त कुलपति को बताया। उस करुणा से ओत-प्रोत
कुलपति ने मधुर वचनों से मुझे समझाया।

गाहा :-

वच्छे! इह संसारे सुलहाइं एरिसाइं दुक्खाइं ।

अकयम्मि सुह-निमित्ते धम्मे परलोय-बंधुम्मि ॥२७॥

संस्कृत छाया :-

वत्से ! इह संसारे सुलभानीदृशानि दुःखानि ।

अकृते सुखनिमित्ते धर्मे परलोकबन्धौ ॥२७॥

गुजराती अनुवाद :-

हे वत्स! सुखना कारणभूत अने परलोकनां बंधु समान धर्म न करवाथी आवा प्रकारना दुःखो आ संसारमां सुलभ छे.

हिन्दी अनुवाद :-

हे वत्स! सुख के कारणभूत तथा परलोक में बन्धु समान धर्म न करने से इस प्रकार के दुःख इस संसार में सुलभ हैं।

गाहा :-

जायंति दूसहाइं जेणं चिय एत्थ दुसह-दुक्खाइं ।

तेणेव चत्त-रज्जा वण-वासमुवागया धीरा ॥२८॥

संस्कृत छाया :-

जायन्ते दुःसहानि येनैवात्र दुःसह-दुःखानि ।

तेनैव त्यक्तराज्या वनवासमुपगता धीराः ॥२८॥

गुजराती अनुवाद :-

जेने कारणे आ भवमां असह्य दुःखो आवे छे. ते कारण थी ज सुइ पुरुषोए राज्याने छोडीने वनवासने स्वीकार्यो छे।

हिन्दी अनुवाद :-

जिस कारण से इस जन्म में असह्य दुःख आता है, उसी कारण से ज्ञानी पुरुष राज-पाट को छोड़कर वनवास स्वीकार करते हैं।

गाहा :-

एवं भणमाणस्स उ कुलवइणो तीइ तावसीइ अहं ।

कन्ने होउं भणिया भयवं! वर-नाण-जुत्तोऽयं ॥२९॥

संस्कृत छाया :-

एवं भणतस्तु तु कुलपतेस्तया तापस्याऽहम् ।

कर्णे भूत्वा भणिता भगवान् वरज्ञानयुक्तोऽयम् ॥२९॥

गुजराती अनुवाद :-

आ प्रमाणे कुलपति कहेता हता त्याचे तापसीस मने कानमां कहुं,
आ भगवान कुलपति चहु ज्ञानी छे.

हिन्दी अनुवाद :-

जब कुलपति ऐसा कह रहा था तभी उस तपस्विनी ने मेरे कान में कहा,
यह भगवान कुलपति बहुत ज्ञानी हैं।

गाहा :-

तो पुच्छ इच्छियत्थं भणियाए ताहि विणय-पणयाए ।

पुट्टो मए महा-यस! केण हिओ नंदणो मज्झ? ॥३०॥

संस्कृत छाया :-

ततः पृच्छेप्सितार्थं भणितया तदा विनयप्रणतया ।

पुष्टो मया महायश ! केन हतो नन्दनो मम ? ॥३०॥

गुजराती अनुवाद :-

तेथी मनोवांछित अर्थने पूछी ले, त्याचे में विनयपूर्वक कहुं के हे
महायश! मारो पुत्रनुं अपहरण कोणे कर्युं?

हिन्दी अनुवाद :-

इसलिए मनोवांछित अर्थ पूछ लो। तब मैंने विनयपूर्वक कहा हे महायश!
मेरे पुत्र का अपहरण किसने किया?

गाहा :-

किं जीवइ अहव मओ पिक्खिस्समहं कयाइवि नवत्ति? ।

अह भणियं कुलवइणा सम्मं दाऊण उवओगं ॥३१॥

संस्कृत छाया :-

किं जीवति अथवा मृतः प्रेक्षिष्येऽहं कदाचिदपि न वेति ।

अथ भणितं कुलपतिना, सम्यग्दत्त्वोपयोगम् ॥३१॥

गुजराती अनुवाद :-

पुत्र अपहरणादि प्रश्नोत्तर

मारो पुत्र शुं जीवे छे के मरी गयो छे? क्यारे पण हुं तेने जोइश
के नहि? त्यारे सारी रीते उपयोग मूकीने कुलपतिस मने कहुं.

हिन्दी अनुवाद :-

पुत्र अपहरणादि प्रश्नोत्तर-

हे कुलपति! आप अपने ज्ञान से यह पता कर बताइए कि मेरा पुत्र मर गया है या अभी जीवित है। मैं कभी उसे देख पाऊँगी या नहीं? तब कुलपति ने ध्यान से देखकर कहा-

गाथा :-

वच्छे! उच्छंग-त्थो तुह तणओ अवहिओ उ देवेण ।

पाण-विओयण-हेउं पुव्व-विरुद्धेण कुद्धेण ॥३२॥

संस्कृत छाया :-

वत्से ! उत्सङ्गस्थस्तव, तनयोऽपहतस्तु देवेन ।

प्राणवियोजनहेतुं, पूर्वविरुद्धेन क्रुद्धेन ॥३२॥

गुजराती अनुवाद :-

हे वत्स! पूर्वभवना विरोधी (क्रोधी) देवे मायी नाखवाना हेतुथी खोळामां रहेला ताचा पुत्रनुं अपहरण कर्युं छे.

हिन्दी अनुवाद :-

हे पुत्री! पूर्व जन्म का विरोधी क्रोधी देव ने मार डालने के लिये तुम्हारे पुत्र का अपहरण किया है।

गाथा :-

वेयङ्ग-गिरि-निउंजे नेऊण सिला-यलम्मि विउलम्मि ।

मुक्को छुहाभिभूओ किल किच्छेणेस मरउत्ति ॥३३॥

संस्कृत छाया :-

वैताढ्यगिरिनिकुञ्जे, नीत्वा शिलातले विपुले ।

मुक्तः क्षुधाभिभूतः किल कृच्छ्रेण एष म्रियतामिति ॥३३॥

गुजराती अनुवाद :-

वैताढ्य पर्वत उपर ना वनमां लइ जईने मोटी शिला ऊपर तेने मूक्यो, जेथी भूखथी पीडायेलो कष्ट पूर्वक चाळक मरी जाय.

हिन्दी अनुवाद :-

उसने वैताढ्य पर्वत के ऊपर स्थित वन में उसे ले जाकर बड़ी शिला पर रखा ताकि भूख से व्याकुल बालक कष्टपूर्वक मर जाय।

गाहा :-

अह कहवि विहि-वसेणं समागओ तत्थ नह-यरो एक्को ।
निय-भारिया-समेओ तेण य पुत्तोत्ति सो गहिओ ॥३४॥

संस्कृत छाया :-

अथ कथमपि विधिवशेन समागतस्तत्र नभश्चर एकः ।
निजभार्यासमेतस्तेन, च पुत्र इति स गृहीतः ॥३४॥

गुजराती अनुवाद :-

परंतु कोई भाग्यना योगथी त्यां पीतानी पत्नी सहित एक विद्याधर
आव्यो. अने आ कोईनो 'पुत्र' छे सम्ब विचारी ग्रहण कर्यो.

हिन्दी अनुवाद :-

किन्तु किसी भाग्य के योग से वहाँ अपनी पत्नी सहित एक विद्याधर आ
गया, और वह यह किसी का पुत्र है, ऐसे विचार कर उसे ग्रहण कर लिया।

गाहा :-

खयरस्स तस्स गेहे वुड्ढिं जाही सुहेण, तत्तो य ।
संपत्त-जोव्वणो सो मिलिही तुह हत्थिणपुरम्मि ॥३५॥

संस्कृत छाया :-

खचरस्य तस्य गृहे वृद्धिं यास्यति सुखेन, ततश्च ।
सम्प्राप्तयौवनः स मिलिष्यति तव हस्तिनापुरे ॥३५॥

गुजराती अनुवाद :-

विद्याधरना घरे सुखपूर्वक ते बालक वृद्धिने पाम्शे, त्यारबाद यौवन
वयने प्राप्त थयेलो तने हस्तिनापुरमां मळशे.

हिन्दी अनुवाद :-

विद्याधर के घर वह बालक सुखपूर्वक बड़ा होगा और बाद में युवावस्था प्राप्त
होने पर हस्तिनापुर में मिलेगा।

गाहा :-

एवं च तेण भणिए पणडु-सोगा नरिंद! जाया हं ।
फल-मूल-कयाहारा विणय-परा तावसि-जणस्स ॥३६॥

संस्कृत छाया :-

एवं च तेन भणिते, प्रनष्टशोका नरेन्द्र ! जाताऽहम् ।
फलमूलकृताहारा, विनयपरा तापसीजनस्य ॥३६॥

गुजराती अनुवाद :-

हे राजन्! आ प्रमाणे कुलपतिना कहेवाथी हूं शोक रहित थीं. फल-
फूल नो आहार करती तापसी-समूहना विनयमां रत बनी.

हिन्दी अनुवाद :-

हे राजन! कुलपति के इस प्रकार कहने पर मैं शोक रहित हो गयी और
फल-फूल खाकर तपस्वी समूह की सेवा में लग गयी।

गाहा :-

प्रिय! कइवय-दिवसाइं अच्छामि तहिं तु आसमे जाव ।
ता अन्न-दिणे कुलवइ मूले धम्मं सुणिंतीए ॥३७॥

संस्कृत छाया :-

प्रिय ! कतिपयदिवसानि, आसे तत्र त्वाश्रमे यावत् ।
तावदन्यदिने कुलपति-मूले धर्मं श्रुण्वन्त्याम् ॥३७॥

गुजराती अनुवाद :-

सुरथकुमारनुं आगमन

हे प्रिय! केटलाक दिवस हूं ते आश्रममां रही, रक वखत चहु
तापसीओनी साथे कुलपति पासे धर्म श्रवण करती हती.

हिन्दी अनुवाद :-

सुरथ कुमार का आगमन-

हे प्रिय! मैं बहुत दिनों तक उस आश्रम में रही। एक बार बहुत से तपस्वियों
के साथ मैं कुलपति के पास धर्म श्रवण कर रही थी।

गाहा :-

बहु-तावसि-सहियाए सहसा आसेण वेग-जुत्तेण ।
अवहरिओ संपत्तो राय-सुओ तत्थ एगागी ॥३८॥

संस्कृत छाया :-

बहुतापसीसहितायां सहसाऽश्वेन वेगयुक्तेन ।
अपहतः सम्प्राप्तो राजसुतस्तत्रैकाकी ॥३८॥ युग्मम् ॥

गुजराती अनुवाद :-

तेटलाभां अकस्मात् वेगवाला घोडाथी अपहरण करायेलो सक सकलो राजपुत्र त्यां आव्यो.

हिन्दी अनुवाद :-

तभी अचानक वेग वाले घोड़े से अपहृत एक अकेला राजपुत्र वहाँ आया।

गाहा :-

अह अतिहि-वच्छलेहिं तावस-कुमरेहिं विहिय-संमाणो ।

आगम्म विहिय-विणओ उवविट्ठो कुलवइ-समीवे ॥३९॥

संस्कृत छाया :-

अथाऽतिथिवत्सलैस्तापसकुमारै-विहितसन्मानः ।

आगम्य विहितविनय उपविष्टः कुलपति-समीपे ॥३९॥

गुजराती अनुवाद :-

त्याऽरबाद अतिथि वत्सल खा तापस कुमारेस तेनु सन्मान कर्युं करेला विनयवाळो ते पण कुलपतिनी पासे बेटो.

हिन्दी अनुवाद :-

उसके बाद अतिथि-प्रेमी तापस कुमारों ने उसका सम्मान किया। सम्मान किया हुआ वह राजपुत्र कुलपति के पास बैठा।

गाहा :-

कुलवइणा सो पुट्ठो को सि तुमं आगओ कुओ भइ!? ।

तत्तो य तेण भणियं कहेमि निसुणेह भयवं! ति ॥४०॥

संस्कृत छाया :-

कुलपतिना स पृष्टः कोऽसि त्वं ? आगतः कुतो भद्र ! ? ।

ततश्च तेन भणितं, कथयामि निश्रृणुत भगवन् ! इति ॥४०॥

गुजराती अनुवाद :-

कुलपतिस पूछ्युं— 'हे भद्र! तुं कोण छे? क्यांथी आव्यो छे? त्यारे तेणे कह्युं— 'हे भगवन्! कहं छुं ते तमे सांभलो.

हिन्दी अनुवाद :-

कुलपतिरु पृष्ठ्युं— हे भद्र! तूं कोण छे? क्याथी आव्यो छे? त्यारे तेणे कह्यु— हे भगवन्! कहं छुं ते तमे सांभलो.

गाहा :-

सिद्धत्थपुरे राया सुग्गीवो नाम आसि विक्खाओ ।

कणगवई से देवी तीए सुओ सुरह-नामो हं ॥४१॥

संस्कृत छाया :-

सिद्धार्थपुरे राजा सुग्रीवो नामाऽऽसीद् विख्यातः ।

कनकवती तस्य देवी तस्याः सुतः सुरथनामाऽहम् ॥४१॥

गुजराती अनुवाद :-

सिद्धार्थपुरमां विख्यात सुग्रीव नाम्नो राजा हतो. ते राजानी कनकवती चाणी हती तेनो सुरथ नाम्नो हुं पुत्र छु.

हिन्दी अनुवाद :-

सिद्धार्थपुर में एक प्रसिद्ध राजा सुग्रीव था। उसकी रानी कनकवती का सुरथ नामक मैं पुत्र हूँ।

गाहा :-

अइवल्लहोत्ति पिउणा जुवराय-पयम्मि बाल-भावेवि ।

अहिसित्तो अवमन्निय पुत्तं जिह्दं तु सुप्पइह्दं ॥४२॥

संस्कृत छाया :-

अतिवल्लभ इति पित्रा, युवराजपदे बालभावेऽपि ।

अभिषिक्तोऽवमत्य, पुत्रं ज्येष्ठं तु सुप्रतिष्ठम् ॥४२॥

गुजराती अनुवाद :-

माता-पिताने अत्यंत प्रिय होवाथी पोताना मोटा पुत्र सुप्रतिष्ठनी अवगणना कटीने बाल्यावस्थां ज मने पितास युवराजपदे स्थापन कर्यो!

हिन्दी अनुवाद :-

माता-पिता को अत्यन्त प्रिय होने से उन्होंने अपने बड़े बेटे सुप्रतिष्ठ की अवगणना कर बाल्यावस्था में ही मुझे युवराज पद पर स्थापित कर दिया।

गाहा :-

अह अन्नया कयाइवि खय-वाहीए मयम्मि जणयम्मि ।
तस्स पए हं राया अहिसित्तो मंति-वग्गेण ॥४३॥

संस्कृत छाया :-

अथान्यदा कदाचिदपि, क्षयव्याधिना मृते जनके ।
तस्य पदेऽहं राजाऽभिषिक्तो मन्त्रिवर्गेण ॥४३॥

गुजराती अनुवाद :-

हवे कोइ वखत क्षयना रोगथी पिता मृत्यु पामे छते मंत्रीवर्गे पिताना
स्थाने मारो राजा रूपे अभिषेक कर्यो.

हिन्दी अनुवाद :-

बाद में क्षयरोग से पिता की मृत्यु हो जाने पर मन्त्रियों ने पिता के स्थान
पर राजा के रूप में मेरा अभिषेक कर दिया।

गाहा :-

जिद्वस्स अन्न-जणणी-तणयस्स उ तस्स सुप्पइद्वस्स ।
विज्जाहरेण केणवि कय-उवयारेण दिन्नाओ ॥४४॥
नहगामिणि-पमुहाओ विज्जाओ तप्पभावओ तेण ।
काऊण य संगामं अहिट्ठियं अप्पणा रज्जं ॥४५॥ युग्मम् ॥

संस्कृत छाया :-

ज्येष्ठस्य अन्यजननीतनयस्य तु तस्य सुप्रतिष्ठस्य ।
विद्याधरेण केनाऽपि कृतोपकारेण दत्ताः ॥४४॥
नभोगामिनिप्रमुखा विद्यास्तत्रभावतस्तेन ।
कृत्वा च सङ्ग्राममधिष्ठितमात्मना राज्यम् ॥४५॥ युग्मम् ॥

गुजराती अनुवाद :-

ते ओरमान मोटा भाई सुप्रतिष्ठने तेना उपकारथी खुश थयेला कोई
विद्याधरे नभोगामिनी वगेरे विद्या तेने आपी- अने ते विद्याना प्रभाव थी युद्ध
करीने तेणे पोतानुं राज्य मेलव्यु,

हिन्दी अनुवाद :-

बड़े भाई सुप्रतिष्ठ को उनके उपकार से खुश हुए किसी विद्याधर ने

नभोगाभिनी विद्या दी और उस विद्या के प्रभाव से युद्ध करने पर उन्हें अपना राज्य मिल गया।

गाहा :-

तस्स भएण अहंपि हु समागओ पुर-वरीए चंपाए ।
जणणि-समेओ पासे मायामह-कित्तिधम्मस्स ॥४६॥

संस्कृत छाया :-

तरय भयेनाहमपि खलु, समागतः पुरवर्यायां चम्पायाम् ।
जननीसमेतः पार्श्वे, मातामह-कीर्तिधर्मस्य ॥४६॥

गुजराती अनुवाद :-

तेना भयथी हुं पण मातानी साये चंपा नगरीमां नाना (माताना पिता)
कीर्तिधर्म राजा पासे आव्यो.

हिन्दी अनुवाद :-

उनके भय से मैं अपनी माँ के साथ चम्पानगरी में अपने नाना कीर्तिधर्म
के पास आ गया।

गाहा :-

तेणवि निय-देसंते दिन्नं गामाण सहस्सयं एगं ।
तत्थ य जणणी-सहिओ भयवं! अच्छामि अहयंति ॥४७॥

संस्कृत छाया :-

तेनाऽपि निजदेशान्ते दत्तं ग्रामाणां सहस्रमेकम् ।
तत्र च जननीसहितो, भगवन् ! आसेऽहमिति ॥४७॥

गुजराती अनुवाद :-

तेमणे पण मने पोताना देशाना छेवाडे एहेला एक हजार गाम आप्या.
अने त्यां हे भगवन्! माता सहित हुं एहुं छु.

हिन्दी अनुवाद :-

उन्होंने भी मुझे अपने देश के किनारे रहे हुए एक हजार गाँव दिए। हे भगवन्!
मैं वहीं अपनी माँ के साथ रहता हूँ।

गाहा :-

कइवय-दिणेहिं इंतो इमाइ अडवीइ वाणियग-सत्थो ।
मह पुरिसेहि विलुत्तो पत्तं वित्तं तहिं पउरं ॥४८॥

संस्कृत छाया :-

कतिपयदिनेर्यन् अस्यामटव्यां वाणिजसार्थः ।

मम पुरुषै-र्विलुप्तः, प्राप्तं वित्तं तत्र प्रचुरम् ॥४८॥

गुजराती अनुवाद :-

केटलाक दिवसो पसार थया चाद आज अटवीमां मारा पुरुषोस वणिक लोको नो सार्थ लूट्यो अने तेमनी पासेथी घणुं धन प्राप्त कर्युं!

हिन्दी अनुवाद :-

कितने दिन बीत जाने के बाद आज जंगल में हमारे लोगों ने बनियों के एक कारवां को लूटा और उनके पास से काफी धन प्राप्त किया।

गाहा :-

अन्नं च तत्थ पत्ता तुक्खार-तुरंगमा बहुविहीया ।

ताणावाहण-हेउं अज्जेव पभाय-समयम्मि ॥४९॥

बाहिं नीहरिओ हं कमेण तुरगे ओ जाव वाहेमि ।

ताविक्केणं सहसा हरिओ विवरीय-सिक्खेण ॥५०॥

संस्कृत छाया :-

अन्यच्च तत्र प्राप्ताः, तुक्खार-तुरङ्गमा बहुविधाः ।

तेषामावहनहेतुरद्यैव प्रभातसमये ॥४९॥

बहिर्निस्तोऽहं क्रमेण तुरगान् ओ यावद्वाहयामि ।

तावदेकेन सहसा, हृतो विपरीतशिक्षेण ॥५०॥ युगम्

गुजराती अनुवाद :-

तथा तेमां उत्तम जातिना घोडा पण प्राप्त थया. ते घोडाओनां परीक्षा हेतु आज ज सवाटे हूं बहार नीकल्यो. क्रमवडे अधोने ज्यां सुधी वहन करुं छुं. त्यां तो सक विपरीत शिक्षावाळा घोडास मारुं अपहरण कर्युं.

हिन्दी अनुवाद :-

उसमें उत्तम जाति के घोड़े भी प्राप्त हुए। उन घोड़ों की परीक्षा हेतु आज सबेरे बाहर निकला। क्रम से मैं घोड़ों की परीक्षा कर रहा था तभी एक विपरीत शिक्षावाले घोड़े ने मेरा अपहरण कर लिया।

गाहा :-

अविय।

जह जह ओक्खंचिज्जइ तह तह वेगं पगिण्हमाणेण ।
भयवं! तुरंगमेणं इहाणिओ आसमे तुम्ह ॥५१॥

संस्कृत छाया :-

अपि च-

यथा यथाऽऽकृष्यते तथा तथा वेगं प्रगृह्णता ।
भगवन् ! तुरङ्गमेणेहानीत आश्रमे तव ॥५१॥

गुजराती अनुवाद :-

अने वळी जेम-जेम लगाम खेचतो गयो तेम तेम वघाटे वेगने ग्रहण करतो ते घोडो मने तमाटा आश्रममां लाव्यो.

हिन्दी अनुवाद :-

और जैसे-जैसे मैं लगाम खींचता गया वैसे-वैसे वह और तेज होता गया और यह मुझे आपके आश्रम में ले आया।

गाहा :-

एवं च जाव साहइ सो सुरहो कुलवइस्स वुत्तंतं ।
तुरयमणुमग्ग-लग्गं ताव य सिन्नंपि से पत्तं ॥५२॥

संस्कृत छाया :-

एवञ्च यावत् कथयति, स सुरथः कुलपतेर्वृत्तान्तम् ।
तुरगमनुमार्गलग्नं तावच्च सैन्यमपि तस्य प्राप्तम् ॥५२॥

गुजराती अनुवाद :-

आ प्रमाणे ज्यां ते सुरथ, कुलपतिने वृत्तांत जणावे छे तेटलीवारमां तो अश्वनी पाछळ लागेलु सैन्य पण त्यां आवी गयुं।

हिन्दी अनुवाद :-

इस प्रकार जब तक सुरथ कुलपति को वृत्तान्त बताता है उतनी देर में उसके पीछे लगे सैनिक भी वहाँ आ पहुँचे।

गाहा :-

अह भणियं सुरहेणं भयवं! वच्चामि नियय-ठाणम्मि ।
जं किंचि मए इण्हं कायव्वं तं च आइससु ॥५३॥

संस्कृत छाया :-

अथ भणितं सुरथेन भगवन् ! ब्रजामि निजस्थाने ।

यत्किञ्चिन्मयेदानीं कर्तव्यं तच्चादिशत ॥५३॥

गुजराती अनुवाद :-

त्याएपछी सुरथे कहयुं 'हे भगवन्! माटा स्थानमां जउं छुं हवे जे कंई पण माटे हालमां करवानुं होय तेनी आज्ञा फरमावो.

हिन्दी अनुवाद :-

तब सुरथ ने कहा हे भगवन्! मैं अपने स्थान पर जा रहा हूँ। इसलिए जो कुछ भी मुझसे करवाना हो, उसकी आज्ञा दें।

गाहा :-

अह कुलवइणा भणियं गुरु-जण-पूयाइ-धम्म-करणम्मि ।

जह-सत्तीइ पयट्टसु सरणागय-वच्छलत्ते य ॥५४॥

संस्कृत छाया :-

अथ कुलपतिना भणितं गुरुजनपूजादिधर्मकरणे ।

यथाशक्त्या प्रवर्तस्व शरणागतवत्सलत्वे च ॥५४॥

गुजराती अनुवाद :-

त्याटे कुलपतिस कहयुं— 'गुरुजननी पूजा विगेरे धर्मकार्यमां तथा शरणागतने विषे वात्सल्य राखवा माटे यथाशक्ति प्रयत्न करवो.

हिन्दी अनुवाद :-

तब कुलपति ने कहा, गुरुजनों की पूजा आदि धर्मकार्य में तथा जो शरणागत हुआ हो उसके प्रति वात्सल्य रखने का यथाशक्ति प्रयास करो।

गाहा :-

अन्नं च भद्र! निसुणसु एसा रन्नो य अमरकेउस्स ।

देवी गय-अवहरिया अच्छई कमलावई नाम ॥५५॥

संस्कृत छाया :-

अन्यच्च भद्र ! निशृणु एषा राज्ञश्चाऽमरकेतोः ।

देवी गजापहताऽऽस्ते कमलावती नाम्नी ॥५५॥

गुजराती अनुवाद :-

अने वळी हे भद्र! सांभळ हाथीवडे अपहरण करायेली अमरकेतु राजानी कमलावती नामनी आ देवी छे—राणी छे.

हिन्दी अनुवाद :-

और हे भद्र सुनो! हाथी द्वारा अपहरण की गयी अमरकेतु राजा की यह कमलावती रानी है।

गाहा :-

दूरे हस्तिणनगरं सावय-पउरा य दुग्गमा अडवी ।

हल-किट्ट-महीए तथा वियरंति न तावस-कुमारा ॥५६॥

संस्कृत छाया :-

दूरे हस्तिन(ना)नगरं श्वापदप्रचुरा च दुर्गमाऽटवी ।

हलकृष्टमह्यां तथा विचरन्ति न तापसकुमाराः ॥५६॥

गुजराती अनुवाद :-

हस्तिनापुर नगर दूर छे, जंगलीप्राणीओथी प्रचुर तथा दुःखपूर्वक जइ शक्य तेवी अटवी छे. अने हळथी खेडेळी जमीन पर तापस कुमारो विचरण करी शकता नथी।

हिन्दी अनुवाद :-

हस्तिनापुर नगर यहाँ से दूर है जिसमें अनेक जंगली जानवर हैं तथा जिसमें बड़ी कठिनाई से जया जा सकता है, ऐसा जंगल है। हल से खोदे गए जमीन पर तापस कुमार विचरण कर सकते नहीं।

गाहा :-

तेण न एसा सक्कइ पराणितं निय-पुरम्मि अम्हेहिं ।

न य कोवि तथा-रूवो अन्नो इह आगओ सत्थो ॥५७॥

संस्कृत छाया :-

तेन नैषा शक्यते पराणेतुं निजपुरेऽस्माभिः ।

न च कोऽपि तथारूपोऽन्य इहागतस्सार्थः ॥५७॥

गुजराती अनुवाद :-

तेथी अमारवडे तेणी ने पोताना नगरमां पहेचाडवानुं काम शक्य नथी, वली तेवा प्रकारनो घीजो कोई सारो सार्थ पण अहीं आव्यो नथी।

हिन्दी अनुवाद :-

अतः मेरे द्वारा इन्हें अपने नगर में पहुँचाना सम्भव नहीं है। उस प्रकार का दूसरा कोई सार्थ भी यहाँ नहीं आया है।

गाथा :-

एसा सुकुमाल-तणू अच्छइ किच्छेण इत्थ वण-वासे ।

ता जइ तुमं पराणसि स-ट्टाणं होइ ता लट्ठं ॥५८॥

संस्कृत छाया :-

एषा सुकुमारतनुरास्ते, कृच्छ्रेणात्र वनवासे ।

तस्माद् यदि त्वं पराणयसि, स्वस्थानं भवति तदा लष्टम् ॥५८॥

गुजराती अनुवाद :-

आ सुकोमल शरीरवाळी कष्टपूर्वक वनमां रही छे. तेथी जो तुं तेना स्थाने पहीचाडे तो सुंदर थाय ।

हिन्दी अनुवाद :-

यह सुकोमल शरीरवाली रानी बड़े कष्ट से बन में रह रही है। इसलिए यदि तुम इन्हें अपने स्थान पर पहुँचा दो तो बहुत अच्छा होगा।

गाथा :-

अह सुरहेणं भणियं भयवं! जं भणह तं करेमिति ।

गंतुं सयमेव अहं अप्पिस्सं अमरकेउस्स ॥५९॥

संस्कृत छाया :-

अथ सुरथेण भणितं भगवन् ! यद् भणत तत् करोमीति ।

गत्वा स्वयमेवाहमर्पिष्याम्यमरकेतवे ॥५९॥

गुजराती अनुवाद :-

त्यारे सुरथे कहयुं—'हे भगवन्! आप जे आज्ञा करो ते करीश. हुं त्यां जइने जाते ज अमरकेतु राजा ने समर्पित करीश।

हिन्दी अनुवाद :-

तब सुरथ ने कहा, 'हे भगवन्! आप जैसी आज्ञा देंगे वैसा करूँगा। वहाँ जाते ही अमरकेतु राजा को इन्हें समर्पित कर दूँगा।

गाहा :-

भणिया हं कुलवइणा वच्छे! सुरहस्स भासियं निसुयं? ।
ता वच्चसु सह इमिणा अन्नो पुण दुल्लहो सत्थो ॥६०॥

संस्कृत छाया :-

भणिताऽहं कुलपतिना वत्से ! सुरथस्य भाषितं निश्चुतम् ? ।
तदा ब्रज सहाऽनेन, अन्यः पुन-दुर्लभः सार्थः ॥६०॥

गुजराती अनुवाद :-

कुलपतिर मनो कह्युं, 'हे वत्से! सुरथनुं कहेलुं सांभलयुं? तेथी आ
सुरथ स्याथे जा, वळी बीजो सार्थ मळवो दुर्लभ छे.

हिन्दी अनुवाद :-

कुलपति ने मुझसे कहा, 'हे वत्सा! तुमने सुरथ का कहा हुआ सुना? इसलिए
इस सुरथ के साथ जाओ, वैसे भी दूसरा सार्थ मिलना दुर्लभ है।'

गाहा :-

अह चिंतियं मए किं इमेण सह होइ गमणमम्हाणं ।
जुगं अहवा जाणइ भयवं चिय एत्थ जं उचियं ॥६१॥

संस्कृत छाया :-

अथ चिन्तितं मया किमनेन सह भवति गमनमस्माकम् ।
योग्यमथवा जानाति, भगवान् एवात्र यदुचितम् ॥६१॥

गुजराती अनुवाद :-

त्याटे मारा वडे विचारायुं— शुं आनी स्याथे जवुं ते मारे योग्य छे,
खरखर तो भगवान कुलपति ज उचित ने जाणे छे.

हिन्दी अनुवाद :-

तब मैंने विचार किया क्या इनके साथ मेरा जाना उचित होगा? वैसे भगवान्
कुलपति ही जो उचित है, जानते हैं।

गाहा :-

इय चिंतिऊण भणियं भयवं! जं भणसि तं करेमिति ।
जइ एवं ता वच्छे! पयइ इइ तेण भणिया हं ॥६२॥

संस्कृत छाया :-

इति चिन्तयित्वा भणितं, भगवन् ! यद् भणसि तत्करोमीति ।
यद्येवं तर्हि वत्से ! प्रवर्तस्व, इति तेन भणिताऽहम् ॥६२॥

गुजराती अनुवाद :-

सम् विचायीने में कहयुं— हे भगवन्! जे आप कहो ते कयीश? जो
आ प्रमाणे छे तो हे वत्से! प्रयाण कए...स प्रमाणे ते कुलपतिस मने कह्युं.

हिन्दी अनुवाद :-

ऐसा विचार कर मैंने कहा, हे भगवन्! जैसा आप कहेंगे वैसा करूंगी। तब
कुलपति ने मुझसे कहा कि प्रयाण करो।

गाथा :-

बहु मन्निय तद्व्ययणं ताहे चलिया नरिंद! तेण समं ।
तक्कालुचियं काठं तावसि-संभासणाईयं ॥६३॥

संस्कृत छाया :-

बहुमत्वा तद्वचनं तदा चलिता नरेन्द्र ! तेन समम् ।
तत्कालोचितं कृत्वा, तापसीसम्भाषणादिकम् ॥६३॥

गुजराती अनुवाद :-

त्याएपछी कुलपतिना वचनने मान्य कयी हे राजन्! ते समयने उचित
तापसी साथे वात कयीने हुं सुरथ साथे चाली.

हिन्दी अनुवाद :-

तब हे राजन्! कुलपति की बात को उचित मानते हुए तापसी से बात कर
सुरथ के साथ चल पड़ी।

गाथा :-

जाव य क्रमेण पत्ता एत्थ पएसम्मि ताव सुरहो सो ।
किंपि मिसं काऊणं थक्को एत्थेव रण्णम्मि ॥६४॥

संस्कृत छाया :-

यावच्च क्रमेण प्राप्तात्र प्रदेशे तावत्सुरथः सः ।
किमपि मिषं कृत्वा स्थितोऽत्रैवारण्ये ॥६४॥

गुजराती अनुवाद :-

अनुक्रमे ते सुरथ ज्यारे आ प्रदेशमां आव्यो त्यारे कंइक बहानुं काढीने
आ ज अरुण्यमां ते रही गयो.

हिन्दी अनुवाद :-

क्रम से जब वह सुरथ इस प्रदेश में आया, कोई बहाना बनाकर इस जंगल
में रुक गया।

गाथा :-

आवासिकुण सिन्नं दिणे दिणे एइ मह समीवम्मि ।

दंसेइ य बहु-माणं, अह अन्न-दिणम्मि एगंते ॥६५॥

संस्कृत छाया :-

आवास्य सैन्यं दिने दिने एति मम समीपे ।

दर्शयति च बहुमानं, अथान्यदिने एकान्ते ॥६५॥

गुजराती अनुवाद :-

त्यां सैन्यनी पडाव नांखी दररोज माटी पासे आववा लाग्यो. अने माटा
प्रति बहुमान दशाविवा लाग्यो.

हिन्दी अनुवाद :-

वहाँ जंगल में सैनिकों का पड़ाव डालकर रोज मेरे पास आने लगा और
मेरे प्रति सम्मान जताने लगा।

गाथा :-

घिनुं आहरणाइं मह पासे आगओ भणइ एवं ।

एयाइं गिण्ह सुंदरि! न सोहसे तं निराभरणा ॥६६॥

संस्कृत छाया :-

गृहीत्वाऽऽभरणानि मम पार्श्वे आगतो भणत्येवम् ।

एतानि गृहाण सुन्दरि ! न शोभसे त्वं निराभरणा ॥६६॥ युग्मम्

गुजराती अनुवाद :-

हवे एक दिवस सकांतमां आभूषणो लइने माटी पासे आवीने कहेवा
लाग्यो, हे सुंदरी! आ आभूषणो ग्रहण कर-आभूषण वगएनी तुं शोभती नयी!

हिन्दी अनुवाद :-

एक दिन एकान्त में आभूषण ले मेरे पास आकर कहने लगा। हे सुन्दरी! यह आभूषण ग्रहण करो, आभूषण के बिना तुम अच्छी नहीं लगती।

गाथा :-

तं देव-दिन्न-कुंडल-पमुहं सव्वंपि नियय-आभरणं ।
परियाणिऊण विम्हिय-हियाए मए इमं भणिओ ॥६७॥

संस्कृत छाया :-

तद् देवदत्तकुण्डलप्रमुखं सर्वमपि निजकाभरणम् ।
परिज्ञाय विस्मितहृदयया मयेदं भणितः ॥६७॥

गुजराती अनुवाद :-

देवतास आपेल कुंडल वि. सर्वे माटा अलंकार जोइने आश्चर्यपूर्वक में तेने कह्युं-

हिन्दी अनुवाद :-

देवता द्वारा मुझे दिए गए कुंडल वगैरह समस्त आभूषण देखकर आश्चर्य पूर्वक मैंने उससे कहा।

गाथा :-

एयाइं कुओ तुमए पत्ताइं सुरह! मज्झ साहेसु ।
सो भणइ सुणसु सुंदरि! पुव्वं मह भिल्ल-पुरिसेहिं ॥६८॥
इह अडवीइ समिन्दो कुसग्गपुर-पत्थिओ वणिय-सत्थो ।
गहिओ तहिं च पत्तं एयं तुह जोग्गमाभरणं ॥६९॥

संस्कृत छाया :-

एतानि कुतस्त्वया प्राप्तानि सुरथ ! मह्यं कथय ।
स भणति शृणु सुन्दरि ! पूर्वं मम भिल्लपुरुषैः ॥६८॥
इहाटव्यां समृद्धः कुशाग्रपुर-प्रस्थितो वणिक्सार्थः ।
गृहीतस्तदा च प्राप्तमेतत्तव योग्यमाभरणम् ॥६९॥ युग्मम् ॥

गुजराती अनुवाद :-

हे सुन्दर! आ अलंकारो तने क्यांथी मळ्या ते मने कहे: त्याटे तेणे कह्युं. 'हे सुंदरी! सांभळ, पूर्वे माटा भिल्ल पुरुषो वडे-

आ अटवीमां कुशाग्रपुर तटफ जतो समृद्धिवाळो रक वणिक सार्थ
लुंटायो हतो. ते बखते तारे योग्य आ सर्व आभूषणो प्राप्त थया.

हिन्दी अनुवाद :-

हे सुरथ! ये आभूषण तुम्हें कहाँ से प्राप्त हुए, मुझे बताओ। तब उसने कहा,
'हे सुन्दरी! सुनो! पहले मेरे भिल्ल पुरुषों द्वारा इस जंगल में कुशाग्रनगर की तरफ
जाते हुए समृद्धशाली एक सार्थ लूटा गया था। उस समय तुम्हारे योग्य ये सभी
आभूषण प्राप्त हुए थे।

गाथा :-

ततो य मए भणियं मह संतियमेवमाभरणमेयं ।
सिरिदत्त-नामगस्स ओ वणियस्स समप्पियं आसि ॥७०॥
हरिसिय-मुहेण भणियं जइ एवं तरिहि सुंदरतरंति ।
ता गेण्ह इमं सुंदरि! इमस्स जोग्गा तुमं, नन्ना ॥७१॥

संस्कृत छाया :-

ततश्च मया भणितं ममसत्कमेवाभरणमेतद् ।
श्रीदत्तनामकाय ओ ! वणिजाय समर्पितमासीत् ॥७०॥
हर्षितमुखेन भणितं यद्येवं तर्हि सुन्दरतरमिति ।
तावद् गृहाणेदं सुन्दरि ! अस्य योग्या त्वं, नान्या ॥७१॥

गुजराती अनुवाद :-

त्यारे मे कह्युं 'आ सर्व अलंकार मारा ज छे जे श्रीदत्त नामना वणिकने
आंप्या हता.

हर्षित मुखे तेणे कह्युं— 'जो रक होय तो बहु सारु. हे सुंदरी! तो
आ अलंकारने ग्रहण कर. तुज आने योग्य छे. बीजी कोइ स्त्री नहिं.

हिन्दी अनुवाद :-

तब मैंने कहा कि यह सारा आभूषण मेरा है जिसे श्रीदत्त नामक वणिक को
मैंने दिया था। हर्षित मुखवाला उसने कहा, 'यदि ऐसा है तो बहुत अच्छा। हे सुन्दरी!
यह आभूषण तुम रखो क्योंकि तुम इसके योग्य हो, दूसरी कोई स्त्री नहीं।

गाथा :-

अह तस्स दुडु-भावं अन्नाऊणं तयं मए गहियं ।
ततो य पइदिणं सो उवयरइ ममं असुह-भावो ॥७२॥

संस्कृत छाया :-

अथ तस्य दुष्टभावमज्ञात्वा तन्मया गृहीतम् ।

ततश्च प्रतिदिनं स उपचरति मामशुभभावः ॥७२॥

गुजराती अनुवाद :-

त्याटे तेना दुष्टभावने नहि जाणीने में अलंकारादि ग्रहण कर्या. त्यारबाद
अशुभभाववालो ते हमेशा मारु सन्मान करवा लाग्यो.

हिन्दी अनुवाद :-

उसके बुरे विचारों को न जानती हुई मैंने वह आभूषण ग्रहण कर लिया।
उसके बाद अशुभ विचारोंवाला वह हमेशा मेरा सम्मान करने लगा।

गाथा :-

आगच्छइ एगंते परिहास-कहाओ कहइ मह पुरओ ।

सवियारं च पलोयइ दंसइ अणुरत्तमप्पाणं ॥७३॥

संस्कृत छाया :-

आगच्छत्येकान्ते परिहासकथाः कथयति मम पुरतः ।

सविकारं च प्रलोकयति, दर्शयत्यनुरक्तमात्मानम् ॥७३॥

गुजराती अनुवाद :-

माटी पासो सकांतमां आवीने विनोद कथाओ करवा लाग्यो. विकारपूर्वक
माटी सामे जुवे छे अने पीतानी अनुदाग चतावे छे.

हिन्दी अनुवाद :-

मेरे पास एकान्त में आकर विनोद कथा आदि करने लगा। बुरी नजर से मुझे
देखता था और अपना प्रेम प्रकट करता था।

गाथा :-

अह अन्न-दिणे पिययम! पावेणं तेण मयण-मूढेण ।

अगणिय कुल-मज्जायं उज्झिय लज्जं सुदूरेण ॥७४॥

बहु मन्निय अविवेयं भणिया एगंत-संठिया एवं ।

वम्मह-पीडिय-देहो सरणं तुह सुयणु! अल्लीणो ॥७५॥

संस्कृत छाया :-

अथान्यदिने प्रियतम ! पापेन तेन मदनमूढेन ।

अगणयित्वा कुलमर्यादामुज्झित्वा लज्जां सुदूरेण ॥७४॥

बहुमत्वाऽविवेकं भणिता एकालसंस्थिता एवम् ।

मन्मथपीडितदेहः शरणं तव सुतनो ! आलीनः ॥७५॥

गुजराती अनुवाद :-

सुरथनो दुराचार

हे प्रियतम! हवे कोई दिवसे कामथी मूढ़ खवा ते पापीस कुलमर्यादाने अवगणीने लज्जाने दूर मूकीन, अविवेकनुं आचरण कटीने सकांतमां रहेली मने कह्युं- हे सुतनो! विकारथी पीडित मने तारुं शरण छे.

हिन्दी अनुवाद :-

सुरथ का दुराचार-

हे प्रियतम! एक दिन कामभावना से मूढ़ वह पापी कुलमर्यादा और लाज छोड़कर अविवेक पूर्वक आचरण करते हुए मुझसे कहा, हे देवी! काम विकार से पीड़ित मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ।

गाहा :-

निय-यंग-संगमेणं सहलं मह कुणसु-जीवियं अज्ज ।

तुह आयत्ता पाणा सव्वस्सवि सामिणी तं सि ॥७६॥

संस्कृत छाया :-

निजाङ्गसङ्गमेन सफलं मम कुरु जीवितमद्य ।

तवायत्ताः प्राणाः, सर्वस्याऽपि स्वामिनी त्वमसि ॥७६॥

गुजराती अनुवाद :-

तारा अंगना संगवडे आजे मारुं जीवन सफल कर. मारा प्राण तने आधीन छे. आ सर्व राज्यादिकनी पण तुं स्वामिनी छे.

हिन्दी अनुवाद :-

अपने अंग से लगाकर आज मेरा जीवन सफल कर दो। मेरा प्राण तेरे वश में है। इस सम्पूर्ण राज्य की तू स्वामिनी हो।

गाहा :-

तुह सुयणु! किंकरो हं आणा-कारी य परियणो सब्बो ।

गाढाणुराग-रत्तं किं बहुणा इच्छसु ममंति ॥७७॥

संस्कृत छाया :-

तव सुतनो ! किङ्करोऽहमाज्ञाकारी च परिजनः सर्वः ।

गाढानुरागरक्तं किं बहुना ? इच्छ मामिति ॥७७॥

गुजराती अनुवाद :-

हे सुतनो! हूं ताची किंकट छुं, सर्व परिजन पण ताची आज्ञाने पाळनाट छे. हवे बहु कहेवा वडे शुं? गाढ अनुरागी सवा माची इच्छा पूर्ण कर!

हिन्दी अनुवाद :-

हे देवी! मैं तुम्हारा सेवक हूँ। सभी लोग तुम्हारी आज्ञा का पालन करने वाले हैं। अब अधिक क्या कहना! प्रगाढ़ प्रेमी की तरह मेरी इच्छा पूर्ण करो।

गाहा :-

तव्वयणं सोऊणं सहसा वज्जेण ताडियाव अहं ।

उप्पन्न-गरुय-दुक्खा पिययम! चिंताउरा जाया ॥७८॥

संस्कृत छाया :-

तद्वचनं श्रुत्वा सहसा वज्रेण ताडितेवाऽहम् ।

उत्पन्नगुरुदुःखा प्रियतम ! चिन्तातुरा जाता ॥७८॥ युग्मम्॥

गुजराती अनुवाद :-

तेना ते वचन सांभलीने हे! प्रियतम! अकम्मात् वज्र थी हणायेलानी जेम हूं अतिशय दुःखवाळी चिंतातुर चनी।

हिन्दी अनुवाद :-

उसका वह वचन सुनकर हे प्रियतम! वज्र से घायल जैसे अतिशय दुःखवाली मैं चिन्तित हो गयी।

गाहा :-

हा! पाविट्टो एसो बलावि सील-खंडणं काही ।

सरण-विहूणाइ ममं, ता इण्हं किं करेमिति? ॥७९॥

संस्कृत छाया :-

हा ! पापिष्ठ एष बलादपि शीलखण्डनं करिष्यति ।

शरणविहीनाया ममं, तस्मादिदानीं किं करोमीति ? ॥७९॥

गुजराती अनुवाद :-

अरे! आ पापिष्ठ! बळात्कारे मारुं शीलखंडन करशे तो शरण रहित हवे हुं शुं करुं?

हिन्दी अनुवाद :-

अरे! यह पापी बलपूर्वक यदि मेरा शील भंग करेगा तो शरणरहित मैं क्या करूंगी।

गाहा :-

निष्भत्थामि गिराहिं संपइ अइनिदुराहिं जइ एयं ।

ता एस अमज्जाओ इण्हंपि विरुवयं कुज्जा ॥८०॥

संस्कृत छाया :-

निर्भत्सयामि गिराभिः सम्प्रत्यतिनिष्ठुराभिर्यद्येतम् ।

तर्ह्येषोऽमर्याद इदानीमपि विरूपकं कुर्यात् ॥८०॥

गुजराती अनुवाद :-

जो अति निष्ठुर वाणी वडे सनो तिरस्कार करीश तो निर्लज्ज सवो ते वधु खराब करशे!

हिन्दी अनुवाद :-

यदि कड़े शब्दों में इसका तिरस्कार करती हूं तो यह निर्लज्ज मेरे साथ बहुत बुरा करेगा।

गाहा :-

ता संपइ मूयत्तं जुत्तं अवलंबिउं तओ पच्छा ।

पत्थावं लहिऊणं नासिस्समिमाओ पावाओ ॥८१॥

संस्कृत छाया :-

तस्मात् सम्प्रति मूकत्वं युक्तमवलम्बितुं ततः पश्चात् ।

प्रस्तावं लब्ध्वा नङ्क्ष्याम्यस्मात् पापात् ॥८१॥

गुजराती अनुवाद :-

तेथी हालमां मौननो आश्रय लेवो योग्य छे. पछी अवसर प्राप्त करीने ते पापी पासे थी नासी जइश.

हिन्दी अनुवाद :-

इसलिए इस स्थिति में मौन रहना ही उचित है बाद में अवसर पाकर उस पापी से दूर हो जाऊँगी।

गाथा :-

इय चिंतिय तुण्हक्का अहो मुहं काउं तत्थ थक्का हं ।
सोवि य दट्टुण ममं निरुत्तरं उट्टिओ तत्तो ॥८२॥

संस्कृत छाया :-

इति चिन्तयित्वा तूष्णीकाऽधोमुखं कृत्वा तत्रस्थिताऽहम् ।
सोऽपि च दृष्ट्वा मां निरुतरामुत्थितस्ततः ॥८२॥

गुजराती अनुवाद :-

एम् विचाटीने मूंगी एवी हुं नीचुं मुख कटीने त्यां एही ते पण मने
निरुत्तर जोईने उठी गयो!

हिन्दी अनुवाद :-

ऐसा विचार कर गूंगी की तरह नीचे मुखकर पड़ी रही। वह भी मुझे निरुत्तर
जान उठकर चला गया।

गाथा :-

पत्ताए रयणीए निब्भर-सुत्ते य सयल-सिन्नम्मि ।
गहिऊण तमाभरणं पासाइं पलोयणमाणा ॥८३॥
निहुय-गईए चलिया भएण कंपंत-तणु-लया गाढं ।
वंचिय पाहरिए हं नीहरिया ताओ सिन्नाओ ॥८४॥
घित्तूण य एग-दिसं चलिया घण-तरु-वणस्स मज्झेणं ।
निसुणांती बहु-सावय-भीसण-सहे बहु-विही (ह?)ए ॥८५॥

संस्कृत छाया :-

प्राप्तायां रजन्यां निर्भरसुप्ते च सकलसैन्ये ।
गृहीत्वा तदाभरणं पार्श्वणि प्रलोकमाना ॥८३॥
निभृतगत्या चलिता भयेन कम्पमानतनुलता गाढम् ।
वञ्चयित्वा प्राहरिकानहं निःसृता तस्मात् सैन्यात् ॥८४॥

गृहीत्वा चैकदिशं चलिता घनतरुवनस्य मध्येन ।

निशृण्वती बहुश्लापदभीषणशब्दान् बहुविधान् ॥८५॥ त्रिभिः कुलकम् ॥

गुजराती अनुवाद :-

कमलावतीनुं निर्गमन

रात्री थये छते सकलसैन्य निद्रावश थयुं त्यारे ते आभरणोने लईने आजु-बाजु जोती. भयथी एकदम कंपती शरीरवाळी चौकीदारोने ठगी ने धीमा पगले चालती ते सैन्यनी बहाद नीकळी गई. अने एक दिशानुं लक्ष्य करीने गाढ वृक्षोथी व्याप्त सवा जंगलनी वच्चे घणा जंगली प्राणीओना अनेक प्रकार ना भयंकट शब्दोने सांभळती हुं चाली. त्रिभिः कुलकम्।

हिन्दी अनुवाद :-

कमलावती का निर्गमन-

रात्रि होने पर जब सभी सैनिक सो गए तब अपने आभूषण लेकर इधर-उधर देखती, डर से एकदम कांपते शरीरवाली, चौकीदारों को पता न चले इसलिए धीरे-धीरे चलती उस सैनिक पड़ाव से बाहर आ गयी।

घने वृक्षों से व्याप्त ऐसा जंगल जिसमें जंगली प्राणी अनेक प्रकार की आवाजें कर रहे थे, को सुनती उसके बीच से चली।

गाहा :-

पवणाकंपिय-पायव-चलंत पत्ताण सणसणारावं ।

सीहोरालि-समाणं मन्नंती वेविर-सरीरा ॥८६॥

वेगेण य गच्छंती घणंधयाराए तीइ रयणीए ।

दीहर-घण-तण-ओच्छाइयाए विसमाए भूमीए ॥८७॥

अवियाणिय-परमत्था झडत्ति पडिया य एत्थ कूवम्मि ।

पिययम! कय-बहु-पावा जीवा इव घोर-नरयम्मि ॥८८॥

संस्कृत छाया :-

पवनाकम्पितपादपचलत्पत्राणां सणसणारावम् ।

सिंहोरालीसमानं मन्यमाना वेपमानशरीरा ॥८६॥

वेगेन च गच्छन्ती घनान्धकारायां तस्यां रजन्याम् ।

दीर्घघनतृणावच्छादितायां विषमायां भूमौ ॥८७॥

अविज्ञातपरमार्था झटिति पतिता चात्र कूपे ।

प्रियतम ! कृतबहुपापा जीवा इव घोरनरके ॥८८॥

गुजराती अनुवाद :-

पवनथी कंपता वृक्षोना पांदडाओना सणसणाट अवाजने सिंहना गंभीर
ध्वनि समान मानती, ध्रुजता शरीरवाळी, गाढ अंधकारथी व्याप्त ते रात्रिमां
ऊंचा-ऊंचा घांस वडे आच्छादित विषम भूमिमां वेग वडे जता, हे प्रियतम!
बहु पापी जीवो घोर नरकमां पडे छे. तेम हुं पण अजाणतां आ कूवामां सकदम
पडी गई. ॥ त्रिभिः विशेषकम् ॥

हिन्दी अनुवाद :-

हवा से कांपते वृक्षों की पत्तियों की सरसराहट मुझे सिंह की गर्जना जैसी
लग रही थी, डरी और कांपती शरीरवाली, घने अंधकार वाली रात में ऊँचे-ऊँचे
घासों से आच्छादित भूमि पर चलती हुई हे प्रियतम! मैं उसी प्रकार इस कुएं में
अचानक गिर पड़ी जैसे अधिक पाप करने वाले पापी घोर नरक में गिर पड़ते हैं।

गाथा :-

भवियव्यया-वसेणं न मया गंभीर-जल निबुद्धावि ।

अगडस्स तडिं पाविय तत्थ निलुक्का अहं राय! ॥८९॥

संस्कृत छाया :-

भवितव्यतावशेन न मृता, गम्भीरजलनिमग्नाऽपि ।

अवटस्य तटीं प्राप्य तत्र निलीनाऽहं राजन् ॥८९॥

गुजराती अनुवाद :-

उंडा पाणीमां पडवा छतां भवितव्यताना योगे हु मटी नहि अने कूवाना
तटने पकड़ी हे राजन्! त्यां हुं छुपाई गई.

हिन्दी अनुवाद :-

गहरे पानी में गिरने पर भी भाग्य के योग से मैं मरी नहीं और कुँए के किनारे
को पकड़कर हे राजन्! वहाँ छुप गयी।

गाथा :-

मरणे उवट्ठिएवि हु सीलं संरक्खियंति तुड्ड-मणा ।

अप्पाणं स-कयत्थं मन्नंता सुरह-भय-मुक्का ॥९०॥

संस्कृत छाया :-

मरणे उपस्थितेऽपि खलु, शीलं संरक्षितमिति तुष्टमनाः ।

आत्मानं स्वकृतार्थं मन्यमाना सुरथभयमुक्ता ॥९०॥

गुजराती अनुवाद :-

मरण समान कष्ट आव्युं छतां पण शीलनी रक्षा थइ तेथी मने खूब संतोष थयो अने पोतानी जातने कृतार्थ मानती सुरथना भयथी मुक्त चनी!

हिन्दी अनुवाद :-

मृत्यु के समान कष्ट आने पर भी शील की रक्षा कर सकी, इससे मुझे अधिक संतोष हुआ और अपने को धन्य मानती सुरथ के भय से मुक्त हो गयी।

गाथा :-

गाढं क्षुधाभिभूया चत्तारि दिणाणि एत्थ कूवम्मि ।

परिचत्त-जीवियासा ठिया अहं शरण-परिहीणा ॥११॥

संस्कृत छाया :-

गाढं क्षुधाभिभूता चत्वारि दिनान्यत्र कूपे ।

परित्यक्तजीविताशा, स्थिताऽहं शरणपरिहीणा ॥११॥

गुजराती अनुवाद :-

क्षुधाथी अत्यंत पीडायेली, जीवितनी आशाथी रहित, शरण विनानी हुं चार दिवस आ कूवांमं रही।

हिन्दी अनुवाद :-

भूख से अतिव्याकुल, जीवित रहने की आशा से रहित, बिना किसी शरण के चार दिन उस कुएं में रही।

गाथा :-

अज्ज पुण कलयलेणं सिबिरं आवासियंति नाऊण ।

सुरहासंकाए पुणो समाउला नाह! संजाया ॥१२॥

संस्कृत छाया :-

अद्य पुनः कलकलेन शिबिरमावासितमिति ज्ञात्वा ।

सुरथाशङ्कया पुनः समाकुला नाथ ! सञ्जाता ॥१२॥

गुजराती अनुवाद :-

वळी आजे कोलाहल वडे कोई छावणीनो पडाव छे, रम जाणी सुरथनी शंका वडे हे नाथ! हुं फटी आकुल-व्याकुल थई!

हिन्दी अनुवाद :-

किन्तु किसी बड़ी छावनी का पड़ाव है, जिसके कारण अधिक शोरगुल हो रहा है, ऐसा सोचकर सुरथ के आस-पास होने की आशंका के कारण मैं पुनः व्याकुल हो गयी।

गाहा :-

ततो कूव-पविष्टं तुम्ह नरं पासिऊण सुदुयरं ।

भीयाइ पुच्छियाइवि न उत्तरं किंचि मे दिन्नं ॥१३॥

संस्कृत छाया :-

ततः कूपप्रविष्टं तव नरं दृष्ट्वा सुष्ठुतरम् ।

भीतया पृथ्याऽपि नोत्तरं किञ्चिद् मया दत्तम् ॥१३॥

गुजराती अनुवाद :-

त्यारच्चाद कूवाभां उतरैला तभाया माणसने जोइ हुं अत्यंत भयभीत थई- मने तेणे पूछ्युं पण में कोई जवाब न आप्यो.

हिन्दी अनुवाद :-

उसके बाद कुएं में उतरे आपके आदमियों को देखकर मैं अत्यन्त भयभीत हो गयी। उन लोगों ने मुझसे पूछा भी पर मैंने कोई जवाब नहीं दिया।

गाहा :-

पुणरवि य तुम्ह नामं सोऊणं विगय-अन्न-आसंका ।

हरिस-भर-निम्भरंगी उत्तरिया देव! कूवाओ ॥१४॥

संस्कृत छाया :-

पुनरपि च तव नाम श्रुत्वा विगतान्याऽऽशङ्का ।

हर्षभरनिर्भराङ्गी उत्तीर्णा देव ! कूपात् ॥१४॥

गुजराती अनुवाद :-

फरी आपनुं नाम सांभळी मारी बीजी सुरथसंबंधी शंकाओ दूर थई गई. हर्षथी छलकायेली हुं कूवाभांथी बहाट नीकळी.

हिन्दी अनुवाद :-

फिर आपका नाम सुनकर सुरथ सम्बन्धी दूसरी सभी आशंकाएँ दूर हो गयीं। खुशी से छलकती हुई मैं कुएं से बाहर आई।

गाहा :-

एयं मएऽणुभूयं सरण-विहूणाए तुम्ह विरहम्मि ।
निसुएण जेण जायइ दुक्खं पास-ट्ठियाणंपि ॥१५॥

संस्कृत छाया :-

एतन्मयानुभूतं शरणविहीनया तव विरहे ।
निश्चतेन येन जायते दुःखं पार्श्वस्थितानामपि ॥१५॥

गुजराती अनुवाद :-

आ प्रमाणे शरण रहित में आपना विरहमां आयु अत्यंत दुःख अनुभव्यु.
जे दुःखने सांभळीने पास्ये दहेलाओने पण दुःख पेदा कटे तेवुं छे.

हिन्दी अनुवाद :-

इस प्रकार शरण रहित मैंने आपके वियोग में ऐसे दुःखों का अनुभव किया,
यह दुःख जिसे सुनकर पास रहा हुआ दूसरा भी दुःखी हो जाय, ऐसा है।

गाहा :-

इय कमलावइ-भणियं आयन्निय अमरकेउ-नरनाहो ।
बाह-जलाविल-नयणो गुरु-सोगो भणितुमाढत्तो ॥१६॥

संस्कृत छाया :-

इति कमलावतीभणितमाकर्णयाऽमरकेतुनरनाथः ।
बाष्पजलाविलनयनो गुरुशोको भणितुमारब्धः ॥१६॥

गुजराती अनुवाद :-

आ प्रमाणे कमलावतीनुं कहेलुं सांभळीने अमरकेतु राजा अत्यंत
शोकवाळा थया अने अश्रुथी सजल नेत्रवाळां कहेवा लाग्या.

हिन्दी अनुवाद :-

कमलावती का कहा हुआ यह वृत्तान्त सुनकर अमरकेतु राजा अत्यन्त दुःखी
हो गये और आंसुओं से भरी आँखों के साथ कहने लगे।

गाहा :-

किं देव! इत्थ कीरइ स-कम्म-वसयाण नवरि जीवाण ।
जायंति दूसहाइं दुक्खाइं एत्थ संसारे ॥१७॥

संस्कृत छाया :-

किं दैव ! अत्र क्रियते स्वकर्मवशगानां नवरं जीवानाम् ।

जायन्ते दुःसहानि दुःखान्यत्र संसारे ॥१७॥

गुजराती अनुवाद :-

अमरकेतु राजा वड़े आम्हासन

कर्मवश जीवोने आ संसारमां दुःसह दुःखो सहन करवा पडे छे. तो हे देव! तेमां शुं कटी शकाय?

हिन्दी अनुवाद :-

अमरकेतु राजा द्वारा आश्वासन-

हे देवी! कर्म के कारण जीवों को इस संसार में दुसह दुःखों को सहन करना पड़ता है, इसमें क्या किया जा सकता है?

गाहा :-

स-कयं सुहमसुहं वा इक्को अणुहवइ विविह-जोणीसु ।

माया पिया य भत्ता बंधु-जणो वावि न हु सरणं ॥१८॥

संस्कृत छाया :-

स्वकृतं शुभमशुभं वा एकोऽनुभवति विविधयोनिषु ।

माता पिता च भर्ता बन्धुजनो वापि न खलु शरणम् ॥१८॥

गुजराती अनुवाद :-

वकी पोते सकलो ज अनेक प्रकारनी योनिओमां शुभ अथवा अशुभ कर्मनि भोगवे छे. दुःखना समये माता-पिता-भाई-बंधुजन वि. कोई पण शरण थतु नयी.

हिन्दी अनुवाद :-

वह अकेले अपने ही अनेक प्रकार की योनियों में शुभ या अशुभ कर्म भोगता है। दुःख के समय माता-पिता, भाई-बन्धु आदि कोई भी शरणदाता नहीं होता।

गाहा :-

राग-होस-वसाए असुह-फलं आसि जं कयं कम्मं ।

तस्स वसाओ सुंदरि! संपत्ता वसण-रिछोली ॥१९॥

संस्कृत छाया :-

रागद्वेषवशया(त्वया)अशुभफलमासीत् यत्कृतं कर्म ।

तस्य वशात् सुन्दरि ! सम्प्राप्ता (तव) व्यसनरिञ्छोली ॥१९॥

गुजराती अनुवाद :-

राग-द्वेषने वश थइ जे कंइ अशुभ कर्म कर्णायुं हश्ये तेना कारणे हे सुन्दरी! आवी दुःखनी परंपरा प्राप्त थइ छे.

हिन्दी अनुवाद :-

राग-द्वेष के वश में आकर जो कोई अशुभ कर्म किए गए उसी के कारण हे सुन्दरी! यह दुःख की परम्परा प्राप्त हुई है।

गाथा :-

एवं गएवि जं देवि! एत्थ कुवम्मि निवडिया एवं ।

संपत्ता तं मन्ने अनण्ण-पुण्णोदओ कोवि ॥१००॥

संस्कृत छाया :-

एवं गतेऽपि यद् देवि ! अत्र कूपे निपतिता एवम् ।

सम्प्राप्ता तन्मन्येऽनन्यपुण्योदयः कोऽपि ॥१००॥

गुजराती अनुवाद :-

आवी प्रतिकूलताओ आवी, तुं आ कुवाभां पडी, ते छतां आ प्रमाणे ताटी सभागम् थयो तेथी कोई अपूर्व पुण्योदय छे तेम् हुं मानुं छुं

हिन्दी अनुवाद :-

ऐसी प्रतिकूलताएँ आई, तुम कुएं में गिरी, उसके बाद इस प्रकार तुम्हारा समागम हुआ, यह सब किसी अपूर्व पुण्योदय से हुआ है, ऐसा मैं मानता हूँ।

गाथा :-

पडिकूड-कारिणावि हु विहिणा विहियं तु एत्तियं लट्ठं ।

जं अक्खय-देहाए तुमए सह संगमो विहिओ ॥१०१॥

संस्कृत छाया :-

प्रतिकूलकारिणाऽपि खलु विधिना विहितं तु एतावल्लष्टम् ।

यदक्षतदेहया, त्वया सह सङ्गमो विहितः ॥१०१॥

गुजराती अनुवाद :-

प्रतिकूलकाटी सवा भाग्ये आटलुं तो सारु कर्तु के जेथी जीवित सवी ताटी साथे माटी संगम थइ गयो.

हिन्दी अनुवाद :-

प्रतिकूलकारी भाग्य ने इतना तो अच्छा किया कि जिससे जीवित तुम्हारे साथ मेरा संगम हो गया।

गाहा :-

एमाइ-बहु-विगप्यं देविं आसासिऊण सो राया ।

निय-सिन्नेण समेओ समागओ गयपुरं कमसो ॥१०२॥

संस्कृत छाया :-

एवमादिबहुविकल्पं देवीमाश्वास्य स राजा ।

निजसैन्येन समेतः समागतो गजपुरं क्रमशः ॥१०२॥

गुजराती अनुवाद :-

इत्यादि बहु वचनो चडे देवीने आश्वासन आपीने ते राजा पोताना सैन्यनी साथे अनुक्रमे हस्तिनापुर नगरमां पहुँची गयो।

हिन्दी अनुवाद :-

इस प्रकार के वचनों से देवी को आश्वासन देकर राजा अपने सैनिकों सहित हस्तिनापुर नगर पहुँच गया।

गाहा :-

कारिय-गरुय-पमोओ थुव्वंतो नयर-नारि-निवहेण ।

कमलावई-समेओ दाणं देंतो अमरकेऊ ॥१०३॥

कय-मंगलोवयारो नायर-जण-जणिय-हियय-आणंदो ।

निय-मंदिरे पविट्टो पक्कल-पाइक्क-परियरिओ ॥१०४॥ युग्मम् ॥

संस्कृत छाया :-

कारितगुरुप्रमोदः स्तूयमानो नगरनारीनिवहेन ।

कमलावती-समेतो दानं ददन्नमरकेतुः ॥१०३॥

कृतमङ्गलोपचारो नागरजनजनितहृदयानन्दः ।

निजमन्दिरे प्रविष्टः पक्कलपदातिपरिवृतः ॥१०४॥ युग्मम् ॥

गुजराती अनुवाद :-

नगर जनोस करेला प्रवेश महेत्सवथी खुश थयेला, कराता मंगल उपचारवाळा, नगरनी नाटीओथी स्तुति कराता, तथा नगरजनोने आनंदित कर्या छे, तेवा राजास समर्थ पायदळनी साथे कमलावती राणी साथे दान आपता पोताना राजमहेलमां प्रवेश कर्यो।।युग्मम्।।

हिन्दी अनुवाद :-

नगरजनों के द्वारा किए गए प्रवेश महोत्सव से खुश हुए, लोग जिसका मंगल उपचार कर रहे थे, नगर की नारियाँ जिसकी स्तुतिगान कर रही थीं, तथा जिसने नगरजनों को आनन्दित कर दिया था, वह राजा अपने पैदल लश्कर सहित कमलावती रानी के साथ लोगों को दान देता हुआ अपने राजमहल में प्रवेश किया।

गाथा :-

एवं च तस्स रत्रो अदिट्ट-दुक्खस्स देवि-सहियस्स ।

वोलीणाइं कइवि हु वरिसाणं सय-सहस्साइं ।।१०५।।

संस्कृत छाया :-

एवञ्च तस्य राज्ञोऽष्टदुःखस्य देवीसहितस्य ।

व्यतिक्रान्तानि कत्यपि खलु वर्षाणां शत-सहस्राणि ।।१०५।।

गुजराती अनुवाद :-

आ प्रमाणे कमलावती राणी सहित सुखपूर्वक ते राजाना हजारो वर्ष पसाट थई गया।

हिन्दी अनुवाद :-

इस प्रकार कमलावती रानी के साथ सुख पूर्वक रहते हजारों वर्ष बीत गए।

गाथा :-

अह अन्नया कयाइवि अत्थाण-गयस्स राइणो तस्स ।

पडिहारानुत्ताओ समंतभहोत्ति नामेण ।।१०६।।

संस्कृत छाया :-

अथान्यदा कदाचिदपि आस्थानगतस्य राज्ञस्तस्य ।

प्रतिहारानुज्ञातः समन्तभद्र इति नाम्ना ।।१०६।।

गुजराती अनुवाद :-

त्याएपछी एक दिवसे अमरकेतु राजा सभामां बेठा हता त्यारे द्वारपालनी आज्ञा वडे पोताना उद्यानमां नियुक्त करेलो समंतभद्र नाम्नी सेवक आव्यो.

हिन्दी अनुवाद :-

तत्पश्चात् एक दिन जब राजा अमरकेतु राजसभा में बैठा हुआ था तभी द्वारपाल की आज्ञा द्वारा अपने उद्यान में नियुक्त समन्तभद्र नामक सेवक आया।

गाथा :-

उज्जाणाम्मि निउत्तो पत्तो पणामित्तु राय-पय-कमलं ।

सीस-निवेशिय-कर-कमल-संपुडो हरिसिओ भणइ ॥१०७॥

संस्कृत छाया :-

उद्याने नियुक्तः प्राप्तः प्रणम्य राजपदकमलम् ।

शीर्षनिवेशितकरकमलसम्पुटो हर्षितो भणति ॥ १०७ ॥ युग्मम् ॥

गुजराती अनुवाद :-

अने ते राजाना चरण-कमलमां प्रणाम करीने मस्तक पट स्थापन करेला करकमलयुगलवाळी हर्ष पावेलो खोळ्यो.

हिन्दी अनुवाद :-

तब उसने राजा के चरणकमलों में प्रणाम कर अपने सिर पर स्थापित कर कमलयुगल के साथ हर्षित होकर कहा—

गाथा :-

पुखं देवेण अहं नेमित्तिय-सुमइ-वयणयं सोच्चा ।

कुसुमायर-उज्जाणस्स पालगत्ते निउत्तो म्हि ॥१०८॥

संस्कृत छाया :-

पूर्वं देवेनाऽहं नैमित्तिकसुमतिवचनं श्रुत्वा ।

कुसुमाकरोद्यानस्य पालकत्वे नियुक्तोऽस्मि ॥१०८॥

गुजराती अनुवाद :-

सुमति नैमित्तिकनुं वचन सांभळीने आपे कुसुमाकर उद्यानना रक्षण माटे पहेलां मने नियुक्त कर्यो हतो।

हिन्दी अनुवाद :-

सुमति ज्योतिषी की बात मानकर आपने हमारी नियुक्ति पहले कुसुमाकर उद्यान की रक्षा के लिए की थी।

गाथा :-

तं च ति-संज्ञं निच्चं पलोयमाणस्स एत्तिओ कालो ।
वोलीणो न य दिट्ठं किंचिवि नेमित्तियाइट्ठं ॥१०९॥

संस्कृत छाया :-

तच्च त्रिसन्ध्यं नित्यं, प्रलोकयत एतावान् कालः ।
गतो न च छटं, किञ्चिदपि नैमित्तिकादिष्टम् ॥१०९॥

गुजराती अनुवाद :-

त्यां त्रणे काळ हंभेशा नजर राखता आटलो काळ पसार थयो पण
नैमित्तिके कहेलुं कांडपण जोवामां आव्युं नहि।

हिन्दी अनुवाद :-

वहाँ तीनों वक्त हमेशा नजर रखते हुए इतने दिन बीत गए किन्तु ज्योतिषी के कहने के अनुसार कुछ भी दिखाई नहीं दिया।

गाथा :-

अज्ज पुण अप्पभाए गयणे उज्जाण-मज्झयारम्मि ।
कुसुमिय-साहि-समूहं इओ तओ पिच्छमाणेण ॥११०॥
एगम्मि दिसा-भाए वल्लर-वेल्ली-सणाह-दुम-गहणे ।
उत्तासिय-हंस-उलो उट्ठाविओ सठण संदोहो ॥१११॥
निसुओ विम्हय-जणओ बहिरिय-आसन्न-सत्त-सुइ-विक्खरो ।
मुहरिय-दिसा-विभागो गरुय-खडक्कार-संसदो ॥११२॥

संस्कृत छाया :-

अद्य पुनरप्रभाते गगन उद्यानमध्ये ।
कुसुमितशाखिसमूहं इतस्ततः प्रेक्षमाणेन ॥११०॥
एकस्मिन् दिग्भागे वल्लरवल्लिसनाथद्रुमगहने ।
उत्त्रासितहंसकुल उत्थापितः शकुनसन्दोहः ॥१११॥

निश्चुतो विस्मयजनको, बधिरितासन्नसत्त्वश्रुतिविवरः ।

मुखरित-दिग्विभागो, गुरुकखटत्कारसंशब्दः ॥११२॥तिसृभिः कुलकम्

गुजराती अनुवाद :-

परंतु आज्ञे चानिना अंते उद्याननी मध्ये विकसित वृक्षोना समूहने आम् तेम् जोतो हतो तेवाभां सक दिशाभां बहु वेलडीओधी छवाई गयेल वृक्षनी झाडीमां, जेणे हंसना समूहने त्रास पमाडयो छे पक्षीओना समूहने उडाडी दीधो छे. नजीकमा रहेला प्राणीओना कानने बहेरा बनावी दीधा छे. दिशाना विभागने जेणे वाचाळ बनावी दीधो छे तेवो मोटो धक्काकरणो शब्द में सांभळयो. त्रिभिः कुलकम्.

हिन्दी अनुवाद :-

किन्तु आज रात्रि के अन्त में उद्यान के मध्य में विकसित वृक्षों के समूह को मैं इधर-उधर देख रहा था तभी एक दिशा में बहुत सी लताओं से आच्छादित हो गए एक वृक्ष की झाड़ी से, जिससे हंसों का समूह भी डर गया हो, जिसने पक्षियों के समूह को उड़ा दिया था तथा जो नजदीक पड़े प्राणियों को बहरा बना दिया था, दिशा के खण्डों को जिसने वाचाल बना दिया था, ऐसी बड़ी ठोस आवाज मैंने सुनी।

गाथा :-

सोरुण य तं सहं विम्हिय-उप्फुल्ल-लोयणेण मए ।

पुलइय तत्तोहुत्तं चिंतियमव्वो! किमेयंति ॥११३॥

संस्कृत छाया :-

श्रुत्वा च तच्छब्दं विस्मितोत्फुल्ललोचनेन मया ।

दृष्ट्वा तदभिमुखं (तत्तोहुत्तं) चिन्तितं अहो ! किमेतदिति ॥११३॥

गुजराती अनुवाद :-

ते शब्द सांभळीने अरे! आ श्युं थयुं? स प्रमाणे विस्मयथी पहीळा थयेला नेत्रवाळा में ते तरफ जोयुं अने विचार्युं.

हिन्दी अनुवाद :-

वह आवाज सुनकर अरे! यह क्या हुआ? इस प्रकार विस्मय से विस्फारित नेत्रों वाला मैं उस तरफ देखा और विचार किया।

गाहा :-

कस्स पुण एस सहो समुद्धिओ एत्थ वण-निगुंजम्मि ।
इय चिंतंतो कोऊहलेण तत्तोमुहो चलिओ ॥११४॥

संस्कृत छाया :-

कस्य पुनरेष शब्दः समुत्थितोऽत्र वननिकुञ्जे ।
इति चिन्तयन् कुतूहलेन ततोमुखश्चलितः ॥११४॥

गुजराती अनुवाद :-

अरे! आ वननां निकुंजमां आ कोनो अवाज आव्यो! स प्रमाणे विचारता
कुतूहलथी हुं ते तरफ चाल्यो.

हिन्दी अनुवाद :-

अरे! इस वन निकुंज में यह किसकी आवाज आई? यह विचार करता हुआ
कुतूहल के साथ उस तरफ चला।

गाहा :-

ताव य दिट्ठा भू-पट्ठि-संठिया बउल-पायव-समीवे ।
मूच्छा-निमीलियच्छी अधरिय-सुर-सुंदरी-रूवा ॥११५॥
अहिणव-जोव्वण-उब्भेय-सुंदरा सयल-मणहरावयवा ।
पउम-चुया इव लच्छी नर-वर! वर-बालिया एक्का ॥११६॥

संस्कृत छाया :-

तावच्च छष्टा भूपृष्ठसंस्थिता बकुलपादपसमीपे ।
मूर्च्छानिमीलिताक्षी अधरितसुरसुन्दरीरूपा ॥११५॥
अभिनवयौवनोद्भेद-सुन्दरा सकलमनोहरावयवा ।
पद्मच्युतेव लक्ष्मीः नरवर ! वरबालिकैका ॥११६॥ युग्मम्

गुजराती अनुवाद :-

हे राजा! तेटलामां त्यां बकुल वृक्षनी पासे, भूमि पर पडेली, मूर्च्छा
वडे मींचाई गयेला नेत्रोवाळी, देवांगनाओना रूपने पण तिरस्कार करती.

अभिनव यौवन प्रगट थवाथी सुंदर, मनोहर छे जेना समस्त अवयवो
तेवी, कमला उपरथी च्युत थयेली जाणे लक्ष्मी न होय तेवी सुंदर बालिका
जोई!

हिन्दी अनुवाद :-

हे राजा! उतने में वहाँ बकुल वृक्ष के पास मूर्च्छा की वजह से बन्द आँखों वाली देवांगनाओं के रूप का भी तिरस्कार कर दे, ऐसे रूपवाली, नवयुवती होने से जिसके शरीर के सारे अंग सुन्दर थे, जैसे लक्ष्मी कमल के ऊपर से गिर पड़ी हों, ऐसी सुन्दर लड़की को देखा।

गाहा :-

नूनं नह-त्थलाओ निवडंतीए इमीए भूमीए ।

जुवईए पडिसद्दो समुट्टिओ एस सहसत्ति ॥११७॥

संस्कृत छाया :-

नूनं नभस्तलाद् निपतन्त्या अस्या भूम्याम् ।

युवतेः प्रतिशब्दः समुत्थित एष सहसेति ॥११७॥

गुजराती अनुवाद :-

ज्जुट आक्कशमाथी आ भूमि पट पडती युवतिनी आ अकस्मात् जोरदाट अवाज आव्यो छे.

हिन्दी अनुवाद :-

निश्चय ही आकाश से पृथ्वी पर गिरी इस युवती के कारण वहाँ जोरदार आवाज आई।

गाहा :-

कह मन्ने एरिसस्सवि जुवई-रयणस्स एरिसाऽवत्था ।

विबुह-जण-सोयणिज्ज धी! विहिणो विलसियं चित्तं ॥११८॥

संस्कृत छाया :-

कथं मन्ये ईदृशस्यापि युवतिरलस्य ईदृश्यवस्था ।

विबुधजनशोचनीया धिग् ! विधे-विलसितं चित्रम् ! ॥११८॥

गुजराती अनुवाद :-

आवी दिव्यरूपवाळी श्रेष्ठ युवतिनी पंडितोने पण करुणा जगाडे तेवी अवस्था केवी चीते। खटेखट! भाग्यनुं चित्त विलास वाळु छे.

हिन्दी अनुवाद :-

ऐसी दिव्य रूपवाली श्रेष्ठ युवती जो पंडितों में भी करुणा जगा दे, उसकी ऐसी अवस्था कैसे हुई? निश्चित ही यह भाग्य का विचित्र विलास है।

गाहा :-

इय चिंततेण मए सीयल-जल-सीयरेहिं संसित्ता ।

मिउ-पवण-करण-विहिणा अह विहिया सा समासत्था ॥१११॥

संस्कृत छाया :-

इति चिन्तयता मया शीतलजलशीकरैः संसित्ता ।

मृदुपवनकरणविधिनाऽथ विहिता सा समाश्रस्ता ॥१११॥

गुजराती अनुवाद :-

आ प्रमाणे विचारता शीतलजल खिंदुओ चडे सिंचन कर्युं अने मंद
मंद पवन नाखीने तेणी ने में स्वस्थ करी!

हिन्दी अनुवाद :-

इस प्रकार विचार करते हुए शीतल जल की बूँदों से उसे सींचा तथा धीरे-
धीरे हवा देकर मैंने उसे स्वस्थ किया।

गाहा :-

हरिणिव्व जूह-भट्टा सतरल-तारं दिसाओ पुलयंती ।

भणिया मए सुमधुरं कीस तुमं सुयणु! बीहेसि? ॥१२०॥

संस्कृत छाया :-

हरिणीव यूथभ्रष्टा सतरलतारं दिशः पश्यन्ती ।

भणिता मया सुमधुरं कस्मात्त्वं सुतनो ! बिभेषि ? ॥१२०॥

गुजराती अनुवाद :-

यूथथी भ्रष्ट थयेली हरिणीनी जेम चपल दृष्टिथी दिशाओने जोती हती
त्याटे में सुमधुर स्वटे कह्युं 'हे सुतनु! तूं शा माटे डटे छे?

हिन्दी अनुवाद :-

अपने दल से बिछड़ी हिरणी जैसी चंचल दृष्टि से जब वह इधर-उधर चारों
दिशाओं में देख रही थी, तभी मैंने मधुर स्वर में कहा, हे सुतनु! तूं क्यों डर
रही हो?

गाहा :-

मा भदे! कुणसु भयं श्रेवंपि, हु जणय-निव्विसेसो हं ।

का सि तुमं कत्तो वा इह पडिया मज्झ साहेसु? ॥१२१॥

संस्कृत छाया :-

मा भद्रे ! कुरु भयं स्तोकमपि, खलु जनकनिर्विशेषोऽहम् ।
काऽसि त्वं ? कुतो वेह पतिता ? मम कथय ॥१२१॥

गुजराती अनुवाद :-

हे भद्रे! तुं जरापण भय न राख, हुं ताटा पिता समान छुं, तुं कोण छे? अहीया तुं क्यांथी पडी? ते मने कहे?

हिन्दी अनुवाद :-

हे बेटी! तू जरा भी भयभीत न हो, मैं तुम्हारे पिता समान हूँ। तुम कौन हो? और यहाँ कैसे गिर पड़ी, वह मुझे बताओ।

गाहा :-

अविय।

सग्गाओ निवडिया किं साव-प्पहया सुरंगणा तं सि ।
किं वावि भट्ट-विज्जा विज्जाहर-बालिया सुयणु!? ॥१२२॥

संस्कृत छाया :-

अपि च ।

स्वर्गाद् निपतिता किं शापप्रहता सुराङ्गना त्वमसि ।
किं वाऽपि भ्रष्टविद्या विद्याधरबालिका सुतनो! ? ॥१२२॥

गुजराती अनुवाद :-

वळी हे सुतनु! तुं स्वर्गलोकमांथी पडी के श्रापथी हणायेली तुं देवांगना छे? के विद्याथी भ्रष्ट थयेली कोइ विद्याधर छाळा छे.

हिन्दी अनुवाद :-

हे सुतनु! तू स्वर्गलोक से आई हो या शाप से शापित कोई देवांगना हो, या विद्या से भ्रष्ट हुई किसी विद्याधर को बेटी हो।

गाहा :-

तुह-रूव-दंसणुप्पन्न-हरण-बुद्धिस्स नह-पयट्टस्स ।
विज्जाहरस्स कस्सवि किंवा हत्थाओ पब्भट्ठा? ॥१२३॥

संस्कृत छाया :-

त्वद्रूपदर्शनोत्पन्नहरणबुद्धे-र्नभःप्रवृत्तस्य ।

विद्याधरस्य कस्याऽपि किं वा हस्तात् प्रभ्रष्टा ? ॥१२३॥

गुजराती अनुवाद :-

अथवा ताचा रूपना अवलोकनथी अपहरण करवानी बुद्धिवाला आकाश
मां गमन करतां कोइं विद्याधरना हाथमांथी तुं पडी गई छे?

हिन्दी अनुवाद :-

अथवा तुम्हारा रूप देखकर अपहरण बुद्धि वाले आकाशगामी किसी
विद्याधर के हाथ से छूटकर तू यहाँ गिर पड़ी?

गाथा :-

साहेसु सुयणु! एयं महंत-कोऊहलं इमं मज्झ ।

नीसाहारा कह नह-यलाओ पडिया इहुज्जाणे? ॥१२४॥

संस्कृत छाया :-

कथय सुतनो ! एतद् महत्कुतूहलमिदं मम ।

निःस्वाधारा कथं नभस्तलात्पतिता इहोद्याने ? ॥१२४॥

गुजराती अनुवाद :-

हे सुतनु! तुं आ वृत्तांत जणाव... मने स सांभळवा विशेष कुतूहल
छे. के आधार विनानी तुं गगनतलथी आ उद्यानमां केवी रीते पडी?

हिन्दी अनुवाद :-

हे बेटा! तू यह वृत्तान्त मुझे बताओ। यह सुनने का मुझमें विशेष कुतूहल
है कि बिना किसी आधार के आकाश से इस उद्यान में कैसे गिरी?

गाथा :-

इय सा भणिया भू-नाह! मज्झ पडिउत्तरं अदाऊण ।

गुरु-दुक्ख-सूयण-परं अंसु-जलं मोक्तुमारब्धा ॥१२५॥

संस्कृत छाया :-

इति सा भणिता भूनाथ ! मम प्रत्युत्तरमदत्त्वा ।

गुरुदुःखसूचनपरमश्रुजलं मोक्तुमारब्धा ॥१२५॥

गुजराती अनुवाद :-

हे राजन्! मैं तेने आ प्रमाणे पूछ्युं त्यारे मने कंडपण प्रत्युत्तर आप्या
विना बहु शोकने सूचघनाए सवा अश्रुजलने वहाववा मांडी.

हिन्दी अनुवाद :-

हे राजन्! मैंने उससे इस प्रकार पूछा। वह बिना कोई उत्तर दिए अत्यन्त दुःखी होकर अश्रुजल बहाने लगी (रोने लगी)।

गाथा :-

अहं तं तथाविहं पासिऊण परिचिंतियं मए एयं ।

तं एयं संजायं जं पुव्वं सुमइणा भणियं ॥१२६॥

संस्कृत छाया :-

अथ तां तथाविधां छट्वा परिचिन्तितं मयैतद् ।

तदेतत् सज्जातं यत्पूर्वं सुमतिना भणितम् ॥१२६॥

गुजराती अनुवाद :-

त्याएपछी तेवा प्रकारनी तेनी स्थिति जोइ में विचार कर्यो प्रथम जे सुमति नैमिचित्ते कहयुं हतुं ते प्रमाणे आ थयुं छे के.

हिन्दी अनुवाद :-

उसके पश्चात् उसकी इस प्रकार की स्थिति देखकर मैं विचार करने लगा कि पहले सुमति ज्योतिषी ने जैसा कहा था क्या यह उसी प्रकार हुआ है?

गाथा :-

कुसुमायर-उज्जाणे जइया गयणाओ कन्नगा पडिही ।

तत्तो य सिग्घमेव हि पुत्तेण समागमो होही ॥१२७॥

संस्कृत छाया :-

कुसुमाकरोद्धाने यदा गगनात् कन्यका पतिष्यति ।

ततश्च शीघ्रमेव हि पुत्रेण समागमो भविष्यति ॥१२७॥

गुजराती अनुवाद :-

“ज्यारे कुसुमाकर उद्यानमां आकाशमांथी कन्या पडशे त्याएछाद जल्दी पुत्रनो समागम थशे.”

हिन्दी अनुवाद :-

जब कुसुमाकर उद्यान में लड़की गिरेगी उसके बाद जल्द ही पुत्र से समागम होगा।

गाहा :-

ता किं इह पुट्टाए इमाए वरईए ताव साहेमि ।
गंतुं वइयरमेयं जहट्ठियं चेव नर-वइणो ॥१२८॥

संस्कृत छाया :-

तत्किमिहपृष्ट्यानया वराव्या, तावत्कथयामि ।
गत्वा व्यतिकरमेतद् यथास्थितमेव नरपतेः ॥१२८॥

गुजराती अनुवाद :-

तेथी अहीं आ विचाटीने पुछवानुं कंड काएण नथी, हवे तो राजा पासे
जइने आ सर्व हकीकत तेमने ज जणावुं.

हिन्दी अनुवाद :-

इसलिए यहाँ ऐसा विचार कर पूछने का कोई कारण नहीं है। अब तो राजा
के पास जाकर इस सम्पूर्ण हकीकत को उनसे ही बताना चाहिए।

गाहा :-

इय चिंतिऊण तत्तो आसासित्ता सुमधुर-वयणेहिं ।
आणीया निय-गेहे समप्पिया सा स-भज्जाए ॥१२९॥

संस्कृत छाया :-

इति चिन्तयित्वा तत आश्वास्य सुमधुरवचनैः ।
आनीता निजगेहे समर्पिता सा स्वभार्यायै ॥१२९॥

गुजराती अनुवाद :-

ए प्रमाणे विचाटीने त्याएषाद सुमधुए वचने वडे तेने आश्वासन आपीने
माए घटे लइ आव्यो. अने माटी पत्नीने सोंपी छे.

हिन्दी अनुवाद :-

ऐसा विचार कर उसके बाद मधुर वचनों से उसे आश्वासन देकर मेरे घर
ले आया और मेरी पत्नी को सौंप दिया।

गाहा :-

निय-परियणं च सव्वं सरीर-संवाहणाइ-वावारे ।
तीए निउइऊणं समागओ देव-पासम्मि ॥१३०॥

संस्कृत छाया :-

निजपरिजनं च सर्वं शरीरसंवाहनादिव्यापारे ।
तस्या नियोज्य समागतो देवपार्श्वे ॥१३०॥

गुजराती अनुवाद :-

मारा सर्वे परिजनने तेणीनी सारवार आदिना कार्यमां जोडीने हुं आपनी
पासे आव्यो छुं.

हिन्दी अनुवाद :-

अपने सभी परिजनों को उसकी सेवा आदि कार्य में लगाकर मैं आपके पास
आया हूँ।

गाहा :-

एवं समन्तभद्रेण साहियं वइयरं निसामित्ता ।
विम्हिय-हियओ राया अह एवं भणिउमाढत्तो ॥१३१॥

संस्कृत छाया :-

एवं समन्तभद्रेण कथितं व्यतिकरं निशम्य ।
विस्मितहृदयो राजाऽथैवं भणितुमारब्धः ॥१३१॥

गुजराती अनुवाद :-

आ प्रमाणे समन्तभद्रनुं कहेलुं वृत्तांत सांभळीने विस्मित थयेला राजार
बोलवानी प्रारंभ कर्यो-

हिन्दी अनुवाद :-

इस प्रकार समन्तभद्र द्वारा कहे गए वृत्तान्त को सुनकर आश्चर्यचकित हुए
राजा ने बोलना प्रारम्भ किया।

गाहा :-

अव्यो! हु अवितहं तं पिच्छह नेमित्तियस्स सुमइस्स ।
ता पुत्तेण समाणं आसन्नं दंसणं इण्हं ॥१३२॥

संस्कृत छाया :-

अहो ! खल्ववितथं तत् प्रेक्षध्वं नैमित्तिकस्य सुमतेः ।
तदा पुत्रेण सममासन्नं दर्शनमिदानीम् ॥१३२॥

गुजराती अनुवाद :-

अरे! जुओ सुमति नैमित्तिकनुं वचन बरोबर सत्य छे. तेथी हवे मने जल्दी पुत्रनुं दर्शन थशे.

हिन्दी अनुवाद :-

अरे देखो! सुमति नैमित्तिक का कथन विलकुल सच है। इसलिए मुझे शीघ्र ही पुत्र का दर्शन होगा।

गाहा :-

ता भो समंतभद्रय! सिग्धं आणेह बालियं तमिह ।

जीए पभावेण मए पिक्खेयव्वो स-पुत्तोत्ति ॥१३३॥

संस्कृत छाया :-

तस्मात् भोः समन्तभद्र ! शीघ्रमानयत बालिकां तामिह ।

यस्याः प्रभावेण मया प्रेक्षितव्यः स्वपुत्र इति ॥१३३॥

गुजराती अनुवाद :-

तेथी हे समंतभद्र! ते बालिकाने जल्दी अहीं लाव. जेना प्रभावथी मारा पुत्रनुं दर्शन थशे।

हिन्दी अनुवाद :-

इसलिए हे समन्तभद्र! उस बालिका को शीघ्र यहाँ ले आओ जिसके प्रभाव से मेरे पुत्र का दर्शन होगा।

गाहा :-

वयणाणंतरमेव हि समंतभद्रेण गंतुमाणीया ।

सा बालिया विणिज्जिय-सुर-जुवई-रूव-सोहग्गा ॥१३४॥

संस्कृत छाया :-

वचनान्तरमेव हि समन्तभद्रेण गत्वाऽऽनीता ।

सा बालिका विनिर्जितसुरयुवतिरूपसौभाग्या ॥१३४॥

गुजराती अनुवाद :-

सुटसुंदरीनुं आगमन

राजानी आज्ञा थइ के तरत ज जेणे देवांगनाना रूप अने सौभाग्यनो तिस्टकार कर्यो छे तेवी ते बालिकाने समंतभद्र जइने लई आव्यो।

हिन्दी अनुवाद :-

सुरसुन्दरी का आगमन-

राजा की आज्ञा हुई कि जिसने देवांगना के रूप और सौभाग्य का तिरस्कार किया है उस बालिका को समन्तभद्र जाकर तुरन्त ले आये।

गाथा :-

तीए सरीर-सोहं पिच्छिय रत्ना विचिंतियं अब्बो! ।

आगारो च्विय सूयइ इमीए सुकुलम्मि संभूइं ॥१३५॥

संस्कृत छाया :-

तस्याः शरीरशोभां प्रेक्ष्य राज्ञा विचिन्तितं अहो ! ।

आकार एव सूचयत्यस्याः सुकुले सम्भूतिम् ॥१३५॥

गुजराती अनुवाद :-

तेना शरीरनी शोभा जोईने राजास विचार्युं अरे! आ चालानी आकृति तेनी सुकुलमां उत्पत्ति जणावे छे.

हिन्दी अनुवाद :-

उस बालिका के शरीर का सौन्दर्य देखकर राजा ने विचार किया कि अरे इस बालिका की आकृति से इसके किसी अच्छे कुल में पैदा होने का ज्ञान होता है।

गाथा :-

उचियासणोवविट्ठा सा कन्ना अमरकेउ-नरवइणा ।

भणिया हिययब्भंतर-गुरु-सोगुव्वाय-पंडु-मुहा ॥१३६॥

संस्कृत छाया :-

उचितासनोपविष्टा सा कन्या अमरकेतु-नरपतिना ।

भणिता हृदयाभ्यन्तरगुरुशोकोद्घातपाण्डुमुखा ॥१३६॥

गुजराती अनुवाद :-

हृदयमां रहेला अतिशोकनी व्यथा वडे फीक्का मुखवाली अने उचित आसन उपर बैठेली ते कन्याने अमरकेतु राजास पूछ्युं.

हिन्दी अनुवाद :-

हृदय में अति व्यथा के कारण फीके मुखवाली उचित आसन पर बैठी उस कन्या से अमरकेतु राजा ने पूछा।

गाहा :-

वच्छे! उज्झसु सोयं चयसु भयं जणय-निव्विसेसस्स ।
साहिज्जउ मह एयं कम्मि पुरे तं समुप्पन्ना? ॥१३७॥

संस्कृत छाया :-

वत्से ! उज्झ शोकं त्यज भयं जनकनिर्विशेषस्य ।
कथ्यतां ममैतत् कस्मिन् पुरे त्वं समुत्पन्ना ? ॥१३७॥

गुजराती अनुवाद :-

हे वत्से! शोक छोड़ो दे, भयनी त्याग कर, पिता समान मने सर्ववृत्तांत कहे. क्या नगरमा तारो जन्म थयो छे.

हिन्दी अनुवाद :-

हे पुत्री! शोक को छोड़ दो और भय का त्याग कर दो और पिता समान मुझसे पूरा वृत्तान्त सुनाओ कि किस नगर में तेरा जन्म हुआ है?

गाहा :-

कस्स व धूया कह वा इहागया कह व मज्झ उज्जाणे ।
पडिया सि नहयलाओ साहेसु सवित्थरं एयं ॥१३८॥

संस्कृत छाया :-

कस्य वा दुहिता ? कथं वा इहाऽऽगता ? कथं वा ममोद्याने ।
पतिताऽसि नभस्तलात् कथय सविस्तरमेतद् ॥१३८॥

गुजराती अनुवाद :-

तुं कोनी पुत्री छे? क्यां थी आई? अने नभस्तलमांथी अहीं माटा उद्यानमां केवी चीते पडी? स सर्ववृत्तांत विस्तारपूर्वक कहे.

हिन्दी अनुवाद :-

तू किसकी पुत्री है? कहां से आई है? और आकाश से मेरे इस उद्यान में तू कैसे गिरी? यह सारा वृत्तान्त विस्तारपूर्वक बताओ।

गाहा :-

अह सा एवं भणिया गुरु सोया सज्झसेण अभिभूया ।
उम्मुक्क-दीह-सासा न किंचि पडिउत्तरं देइ ॥१३९॥

संस्कृत छाया :-

अथ सैवं भणिता गुरुशोका साध्वसेनाऽभिभूता ।

उन्मुक्तदीर्घश्वासा न किञ्चित् प्रत्युत्तरं ददाति ॥१३९॥

गुजराती अनुवाद :-

आ प्रमाणे राजाना कहेवायी अत्यंत शोकमां गरकाव थयेली, बहु भय वडे पीडायेली ते बालास मोटे निःश्वास मूक्यो परंतु कंडपण बोली शकी नहि.

हिन्दी अनुवाद :-

राजा के ऐसा कहने पर अत्यन्त शोक सन्तप्त और भययुक्त वह बालिका एक लम्बी श्वास छोड़ी किन्तु कुछ बोल नहीं पायी।

गाहा :-

अह पुणरुत्तं रत्ना पुट्टाए तीए कहवि संलत्तं ।

ताय! चएमि न वोत्तुं बहु-दुक्खं नियय-वुत्तंतं ॥१४०॥

संस्कृत छाया :-

अथ पुनरुक्तं राज्ञा पृष्टया तथा कथमपि संलपितम् ।

तात ! शक्नोमि न वक्तुं बहुदुःखं निजवृत्तान्तम् ॥१४०॥

गुजराती अनुवाद :-

त्यारबाद फटी राजास पूछ्युं- सटले बहुकष्टथी ते बोली हे तात! बहु दुःखमय स्वो भारो वृत्तांत कहेवा हुं समर्थ नथी.

हिन्दी अनुवाद :-

उसके बाद जब राजा ने पुनः पूछा तो बड़े कष्ट के साथ उसने कहा, 'हे तात! बहुत दुःखमय है हमारा वृत्तान्त, जिसे मैं कहने में समर्थ नहीं हूँ।

गाहा :-

तहवि हु अलंघणीया आणा तायस्स तेण साहेमि ।

जंबुद्वीवे भरहे कुसगगनयरम्मि नामेण ॥१४१॥

संस्कृत छाया :-

तथापि खल्वलङ्घनीयाऽऽज्ञा तातस्य तेन कथयामि ।

जम्बूद्वीपे भरते कुशाग्रनगरे नाम्ना ॥१४१॥

गुजराती अनुवाद :-

तो पण पितानी आज्ञा उल्लंघनीय नथी तेम मानी कहुं छुं. जंबुद्वीपना भरतक्षेत्रमां अति प्रसिद्ध कुशाय नामना नगरमां नरवाहन नामनी राजा छे.

हिन्दी अनुवाद :-

फिर भी पिता की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया जा सकता, ऐसा मानकर मैं वृत्तान्त कह रही हूँ। जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में कुशाग्रनगर नामक नगर में नरवाहन नाम का राजा है।

गाहा :-

अत्थि पुरं सुप्रसिद्धं तत्थ य नर-वाहणो पुहइ-नाहो ।

रयणवई से देवी तीए घूया अहं ताय! ॥१४२॥

संस्कृत छाया :-

अस्ति पुरं सुप्रसिद्धं तत्र च नरवाहनः पृथिवीनाथः ।

रत्नवती तस्य देवी तस्या दुहिताऽहं तात ! ॥१४२॥ युग्मम्

गुजराती अनुवाद :-

रत्नवती नामनी तेनी राणी छे. हे पिता! तेमनी हु सुसुन्दरी नामनी पुत्री छु.

हिन्दी अनुवाद :-

रत्नवती नाम की उसकी रानी है। हे तात! मैं उन्हीं की सुरसुन्दरी नाम की पुत्री हूँ।

गाहा :-

सुरसुन्दरिति-नामा पुष्विं दुष्विहिय-कम्म-परिणामा ।

वेरिय समेण केणइ पिसाय-रूवेण अवहरिया ॥१४३॥

संस्कृत छाया :-

सुरसुन्दरीतिनाम्नी पूर्वं दुर्विहितकर्मपरिणामा ।

वैरिसमेन केनाऽपि पिशाचरूपेणाऽपहता ॥१४३॥

गुजराती अनुवाद :-

पूर्वना दुर्विहित कर्मना विपाकने लीथे पिशाचरूप दुश्मन समान कोइए मारुं हरण कर्युं.

हिन्दी अनुवाद :-

पूर्व में किसी दुर्विहित कर्म के विपाक के कारण किसी पिशाचरूप दुश्मन ने मेरा अपहरण किया।

गाथा :-

एत्तियमित्तं भणितं सोय-समुब्भुय-गरुय मन्नु-वसा ।

थूलंसुए मुयंती निहुयं रोडं पवत्ता सा ॥१४४॥

संस्कृत छाया :-

एतावन्मात्रं भणित्वा शोकसमुद्भूतगुरुमन्युवशात् ।

स्थूलाश्रूणि मुञ्चती निभृतं रोदितुं प्रवृत्ता सा ॥१४४॥

गुजराती अनुवाद :-

आटलुं मात्र कहीने तरत ज बहु शोकथी उत्पन्न थयेल संताप वडे अश्रुपात करती जोरथी ते रुदन करवा लागी.

हिन्दी अनुवाद :-

इतना मात्र कहकर तुरन्त उत्पन्न हुए शोक के कष्ट के कारण आँसू बहाते हुए वह जोर-जोर से रोने लगी।

गाथा :-

एत्थंतरम्मि रन्नो अद्वासण-संगयाए देवीए ।

कमलावईए गहिया रोवंती सा निजुच्छंगे ॥१४५॥

संस्कृत छाया :-

अत्रान्तरे राज्ञोऽर्धासनसङ्गतया देव्या ।

कमलावत्या गृहीता रुदन्ती सा निजोत्सङ्गे ॥१४५॥

गुजराती अनुवाद :-

सटलाम्नां राजानां अर्धासिने बठेली देवी कमलावतीस रुदन करती ते बालाने पोतानां खोळाम्नां लइ लीथी.

हिन्दी अनुवाद :-

इतने में राजा के आधे आसन पर बैठी कमलावती रानी रोती हुई बाला को अपनी गोद में ले लीं।

गाहा :-

भणिया वच्छे! मा रुय न होई दीवंतरं इमं सुयणु! ।
हत्थिणपुरं हि एयं एसो राया अमरकेऊ ॥१४६॥

संस्कृत छाया :-

भणिता वत्से ! मा रुदिहि न भवति द्वीपान्तरमिदं सुतनो ! ।
हस्तिनापुरं ह्येतदेष राजाऽमरकेतुः ॥१४६॥

गुजराती अनुवाद :-

अने कह्युं हे वत्से! (बेटा) तूं एड नहीं, आ कंई बीजो द्वीप नथी,
हे सुतनु! आ हस्तिनापुर नगर छे. आ अमरकेतु राजा छे.

हिन्दी अनुवाद :-

और बोली 'हे पुत्री तूं रो नहीं, यह कोई दूसरा द्वीप नहीं है। हे पुत्री! यह हस्तिनापुर नगर है और यह अमरकेतु राजा हैं।

गाहा :-

कमलावई अहंपि हु, सहोयरो होइ तुह पिया मज्झ ।
वच्छे! तुमंपि अहं सुय-पुव्वा नाममेत्तेण ॥१४७॥

संस्कृत छाया :-

कमलावत्यऽहमपि खलु, सहोदरो भवति तव पिता मम ।
वत्से ! त्वमपि अस्माकं श्रुतपूर्वा नाममात्रेण ॥१४७॥

गुजराती अनुवाद :-

हुं पण कमलावति छुं. ताटा पिता माटा सहोदर छे. हे वत्से! तने पण
अमे मात्र नामथी पहेलां सांभळी छे.

हिन्दी अनुवाद :-

मैं भी कमलावती हूँ। तुम्हारे पिता मेरे सहोदर भाई हैं फिर भी हे पुत्री! मैंने
पहले भी तुम्हारा नाम सुना है।

गाहा :-

बहुविह-पओयणेणं कुसग्गनयराओ जो जणो एंतो ।
सो सव्वो सुरसुंदरि! तुह गुण-निवहं मह कहिंतो ॥१४८॥

संस्कृत छाया :-

बहुविधप्रयोजनेन कुशाग्रनगराद् यो जन आयन् ।

स सर्वः सुरसुन्दरि ! तव गुणनिवहं मम कथयन् ॥१४८॥

गुजराती अनुवाद :-

वळी हे सुरसुंदरी कार्यविश कुशाग्र नगरमाथी जे लोको अहीं आवे
छे ते सर्वे तारा गुण समुदायने मारी आगळ कहे छे. के,

हिन्दी अनुवाद :-

हे सुरसुन्दरी! अनेक कार्यों से कुशाग्रनगर से जो लोग यहाँ आते हैं सभी
तुम्हारे गुणों को मुझसे कहते हैं कि...

गाहा :-

एवं सुररुव-कलिया एवं पिउणो य वच्छला बाढं ।

एवं कलासु कुसला एवं दक्खिन्न-दय-जुत्ता ॥१४९॥

संस्कृत छाया :-

एवं सुररूपकलिता एवं पितुश्च वत्सला बाढम् ।

एवं कलासु कुशला एवं दाक्षिण्यदयायुक्ता ॥१४९॥

गुजराती अनुवाद :-

“सुरसुंदरी स्वरूपवती छे. तेना पितानी बहु ज लाडकी छे, सर्व कलामां
कुशल छे तथा दाक्षिण्य तथा दयायी युक्त छे.”

हिन्दी अनुवाद :-

सुरसुन्दरी रूपवान है, अपने पिता की चहेती है, सभी कलाओं में पारंगत
दाक्षिण्य तथा दयायुक्त है।

गाहा :-

ता मा कुणसु विसायं एयंपि य पिउ-हरं निजं तुज्झ ।

अच्छसु वीसत्थ-मणा कीडंती विविह-कीडाहिं ॥१५०॥

संस्कृत छाया :-

तस्मात् मा कुरु विषादमेतदपि च पितृगृहं निजं तव ।

आस्व विश्वस्तमनाः क्रीडयन्ती विविधक्रीडाभिः ॥१५०॥

गुजराती अनुवाद :-

तेथी तूं शोक न कर, आ पण ताटा पितानुं ज घट छे, विविध क्रीडाओ वडे. रमती विश्वासपूर्वक रहेजे!

हिन्दी अनुवाद :-

इसलिए तूं शोक न कर, यह भी तुम्हारे पिता का ही घर है। यहाँ विविध प्रकार की क्रीड़ाएँ करते हुए विश्वास पूर्वक रहो।

गाहा :-

एवंविह-वयणेहिं आसासित्ता निजुत्तरीएण ।

अंसुय-धोय-कवोलं तीए मुहं संपमज्जित्ता ॥१५१॥

मुह-सोयं दाऊणं नीया देवीए मंदिरे नियए ।

तत्थवि उक्खिग्ग-मणा अच्छइ गुरु-सोय-संतत्ता ॥१५२॥

संस्कृत छाया :-

एवंविधवचनैराश्वास्य निजोत्तरीयेण ।

अश्रुकघातकपोलं तस्या मुखं सम्प्रमृज्य ॥१५१॥

मुखशौचं दत्त्वा नीता देव्या मन्दिरे निजके ।

तत्राप्युद्विग्नमना आस्ते गुरुशोकसन्तप्ता ॥१५२॥ युग्मम्

गुजराती अनुवाद :-

स प्रमाणे मधुर वचनो वडे आश्वासन आपीने पोताना उत्तरीय वस्त्रवडे अश्रुजलथी भीना थइ गयेला गंडस्थलवाळा तेना मुखने लुछी नाखीने. मुख शुद्धि करावीने पछी कमलावती देवी तेने पोताना महेलमां लइ गइ, त्यां पण शोकातुर सवी ते खुब ज उद्विग्न मनवाळी रहे छे. युग्मम्.

हिन्दी अनुवाद :-

ऐसे मधुर वचन से आश्वासन देकर अपने उत्तरीय (वस्त्र) से उसके आँसुओं से भीगे ललाट वाले मुँह को पोछकर...

मुख शुद्धि कराकर कमलावती देवी उसे अपने महल में ले गयी। वहाँ भी शोकातुर वह उद्विग्न मनवाली रहती है।

गाहा :-

नीससइ दीह-दीहं खणेण थूलंसुटाइं मिल्लेइ ।

मुच्छिज्जई खणेणं खणेण संवरइ अप्पाणं ॥१५३॥

संस्कृत छाया :-

निःश्वसिति दीर्घदीर्घ क्षणेन स्थूलाश्रूणि मुञ्चति ।

मूर्च्छति क्षणेन क्षणेन संवृणोत्यात्मानम् ॥१५३॥

गुजराती अनुवाद :-

मोट निःश्वास मुके छे. अश्रुजल वहेवरावे छे. क्षणवारमां मूर्च्छित थई जाय छे. क्षणमां पोतानां आत्माने छुपावी दे छे.

हिन्दी अनुवाद :-

लम्बी निःस्वास छोड़ती है, आँसू बहाती है, क्षणभर में मूर्च्छित हो जाती हैं, क्षण में अपनी आत्मा को छुपा लेती है।

गाहा :-

विलवइ खणेण विहसइ रोवइ खणेण मूयल्लिनया होइ ।

गुरु-चिंता-भर-विहुरिय-हियया परिहाइ अणुदियहं ॥१५४॥

संस्कृत छाया :-

विलपति क्षणेन विहसति रोदिति क्षणेन मूका भवति ।

गुरुचिन्ताभरविधुरितहृदया परिजहात्यनुदिवसम् ॥१५४॥

गुजराती अनुवाद :-

ते क्षणवार विलास करे छे, क्षणमां हास्य करे छे. क्षणमां रुदन करे छे, क्षणवार मुंगी थई जाय छे. प्रतिदिन अतिशय चिंताना भारतीय खिन्न हृदयवाळी, मुखवाळी ते देखाय छे.

हिन्दी अनुवाद :-

क्षणभर में वह प्रसन्न हो जाती है, क्षण में हँसने लगती है क्षण में रोने लगती है, क्षण में वह चुप हो जाती है। वह प्रतिदिन अति चिंता के भार से खिन्न हृदयवाली दिखाई देती है।

गाहा :-

अह तं विगयाणंदं पिच्छिय कमलावई विचिंतेइ ।

आणाकारी सव्वोवि परियणो ताव एईए ॥१५५॥

संस्कृत छाया :-

अथ तां विगताऽऽनन्दां प्रेक्ष्य कमलावती विचिन्तयति ।

आज्ञाकारी सर्वोऽपि परिजनस्तावदेतस्याः ॥१५५॥

गुजराती अनुवाद :-

कमलावतीराणीना उपाय

आनंदशून्य स्त्री ते बालाने जोइ कमलावती विचारते छे. आ माणे सर्व परिवार सनी आज्ञानुं पालन करनाट छे.

हिन्दी अनुवाद :-

कमलावती रानी का उपाय-

आनन्द से शून्य उस बालिका को देखकर कमलावती रानी विचार करती है। यह हमारा पूरा परिवार उसकी आज्ञा का पालन करने वाला है।

गाथा :-

तह य समाण-वयाओ सिणेह-साराओ राय-कन्नाओ ।

नाणाविह-चेट्टाहिं अणुदियहमिमं विणोएंति ॥१५६॥

संस्कृत छाया :-

तथा च समानवयसः स्नेहसारा राजकन्याः ।

नानाविधचेष्टाभिरनुदिवसमिमां विनोदयन्ति ॥१५६॥

गुजराती अनुवाद :-

अने समानवयवाळी अने स्नेहल राजकन्याओ विविध क्रीडाओ वडे रोज तेने आनंद करावे छे.

हिन्दी अनुवाद :-

और समान उम्र वाली प्रेमी राजकन्या अनेक प्रकार की क्रीडाओं से रोज आनन्द प्रमोद कराती है।

गाथा :-

तहवि हु रइं न पावइ एसा चिंताए सुसइ अणुदियहं ।

ता मन्ने का चिंता जीए एसा उ परिहाइ ॥१५७॥

संस्कृत छाया :-

तथापि खलु रतिं न प्राप्नोत्येषा चिन्तया शुष्यत्यनुदिवसम् ।

तस्माद् मन्ये का चिन्ता यस्या एषा तु परिजहाति ॥१५७॥

गुजराती अनुवाद :-

तो पण ते खुश थती नथी, चिंता वडे आ प्रतिदिन सूकाती जाय छे. तेथी सवी कंड चिंता हश्ये के जेथी आ बाला सुकाइ रही छे.

हिन्दी अनुवाद :-

फिर भी वह खुश नहीं है। चिन्ता से प्रतिदिन सूखती जा रही है। ऐसी क्या चिन्ता है जिससे यह प्रतिदिन सूखती जा रही है?

गाथा :-

जइ ता माउ-पिऊणं सुमरइ ता किं कहेइ न हु मज्झ? ।

मयण-वियार-सरिच्छा नेय वियारा तहिं हुंति ॥१५८॥

संस्कृत छाया :-

यदि तावत् मातापित्रोः स्मरति तर्हि किं कथयति न खलु मम ? ।

मदनविकारसदृशा नैव विकारास्तत्र भवन्ति ॥१५८॥

गुजराती अनुवाद :-

जो ते माता-पिताने याद करती होय तो मने केम् कहती नथी? तथा कामविकार जेवा कोई तेवा विकार पण सनामां जणाता नथी!

हिन्दी अनुवाद :-

यदि वह माता-पिता को याद करती है तो मुझसे कहती क्यों नहीं? काम विकार जैसे कोई विकार भी उसमें है, ऐसा मालूम नहीं होता।

गाथा :-

एगंतं जह सेवइ विहडिय-चक्काइं जह य मेल्लेइ ।

पिय-संगम-साराओ कहाओ जह सुणइ तच्चिन्ता ॥१५९॥

तह मन्ने पेम्म-गहो विलसइ एवंविहाहिं चिट्ठाहिं ।

ता जइ एसा मज्झं तहट्ठियं साहइ सरूवं ॥१६०॥

ता तस्स पावणम्मि वि कोवि उवाओवि लब्भए नूनं ।

न य एसा वज्जरिही पुट्ठावि जहट्ठियं मज्झ ॥१६१॥

संस्कृत छाया :-

एकान्तं यथा सेवते विघटितवाक्यानि यथा च मुञ्चति ।

प्रियसङ्गमसाराः कथा यथा शृणोति तच्चिन्ता ॥१५९॥

तथा मन्ये प्रेमग्रहो विलसत्येवंविधाभिश्चेष्टाभिः ।

तर्हि यद्येषा मम तथास्थितं कथयति स्वरूपम् ॥१६०॥

तदा तस्य प्रापणेऽपि कोऽपि उपायोऽपि लभ्यते नूनम् ।

न चैवा कथयिष्यति पृष्टाऽपि यथास्थितं मह्यम् ॥१६१॥ त्रिभिः
कुलकम्।

गुजराती अनुवाद :-

जो ते सकांतनु सेवन करे, वियुक्त चक्रों ने एकत्रित करे, प्रिय ना संगमवाळी वार्त्ताओं ने तल्लिन थइ सांभळती होय तो हुं जाणु के सवा प्रकारनी चेष्टाओ वडे सनामां प्रेमग्रह विलास करे छे. अने जो ते पोतानो यथास्थित वृत्तांत जणावे तो सनी प्राप्ति नो कोई उपाय पण जरूर मळे. परंतु पूछवा छतां पण आ बाला वास्तविक अर्थ जणावती नथी। त्रिभिः कुलकम्।

हिन्दी अनुवाद :-

यदि वह एकान्त का सेवन करे, वियुक्त चक्रों को एकत्रित करे, प्रिय से मिलन वाली बातों को तल्लीन होकर सुनती हो....

तो मैं समझूँ कि इस प्रकार की क्रियाएँ उसमें प्रेम विलास कर रही हैं। यदि वह अपनी वस्तुस्थिति से अवगत कराए...

तो उसके समाधान का कोई उपाय जरूर मिले किन्तु पूछने पर भी यह बालिका वास्तविक अर्थ नहीं बता रही है।

गाथा :-

वाम-सहावी मयणो अक्खिज्जंतो न पायडो होइ ।

नज्जइ आगारेहिं गोविज्जंतोवि छेएहिं ॥१६२॥

संस्कृत छाया :-

वामस्वभावो मदन आख्यायमानो न प्रकटो भवति ।

ज्ञायत आकारै-गोप्यमानोऽपिच्छेकैः ॥१६२॥

गुजराती अनुवाद :-

विपरीत स्वभाववाळी कामदेव वातचीतथी प्रगट थतो नथी. परंतु मानसिक चेष्टाओ वडे गोपवी राखेलो काम विकार विचक्षणो वडे जाणी शकाय छे.

हिन्दी अनुवाद :-

विपरीत स्वभाव वाले कामदेव की बात-चीत से कुछ प्रगट नहीं होता किन्तु यदि काम विकार छुपा कर रखती हो तो उसकी मानसिक चेष्टाओं से उसे जाना जा सकता है।

गाहा :-

तहवि हु लहामि केणवि हंदि! उवाएण भावमेईए ।

इय चिंतिय आणत्ता निय-चेडी हंसिया नाम ॥१६३॥

संस्कृत छाया :-

तथाऽपि खलु लभे केनाऽपि हन्दि ! उपायेन भावमेतस्याः ।

इति चिन्तयित्वाऽऽज्ञप्ता निजचेटी हंसिकानाम्नी ॥१६३॥

गुजराती अनुवाद :-

रम छतां पण हुं कोई पण उपाय वडे खणीना मनोगत भाव ने जाणु,
रम विचाटी कमलावतीर हंसिका नाम नी पोतानी दासी ने आज्ञा कटी.

हिन्दी अनुवाद :-

फिर भी मैं किसी न किसी उपाय से उसके मनोगत भाव को जानूँ, ऐसा विचार कर कमलावती ने हंसिका नाम की अपनी दासी को आज्ञा दी कि...

गाहा :-

सुरसुंदरीइ उव्वेव-कारणं लहसु हंसिए! कहवि ।

तुज्ज समाण-वयाए साहिस्सइ हियय-सम्भावं ॥१६४॥

संस्कृत छाया :-

सुरसुन्दर्या उद्वेगकारणं लभस्व हंसिके ! कथमपि ।

तव समानवयसः कथयिष्यति हृदयसन्दावम् ॥१६४॥

गुजराती अनुवाद :-

हे हंसिका! गमे तेम कटी ने सुरसुंदरीना उद्वेगनुं कारण तुं जाणी ले, ताचा समानवयनी छे. तेथी हृदयनी वात अवश्य करशे.

हिन्दी अनुवाद :-

हे हंसिका! किसी भी प्रकार से तुम सुरसुन्दरी के उद्वेग के कारणों का पता लगाओ। वह तुम्हारी हमउम्र है इसलिए तुमसे वह अपने दिल की बात अवश्य कहेगी।

गाहा :-

जं आणवेसि सामिणि! इय भणिउं हंसिया गया झत्ति ।

एगंत-डिय-सुरसुंदरीए पासम्मि अल्लीणा ॥१६५॥

संस्कृत छाया :-

यदाज्ञापयसि स्वामिनि ! इति भणित्वा हंसिका गता झटिति ।

एकान्तस्थितसुरसुन्दर्याः पार्श्वेऽऽलीना ॥१६५॥

गुजराती अनुवाद :-

‘हे स्वामिनी! आपनी आज्ञा प्रमाण छे’ सम् कही ने हंसिका जल्दी गइ अने सकांत भं, रहेली सुरसुंदरी नी पास बेठी!

हिन्दी अनुवाद :-

हे स्वामिनी! आपकी आज्ञा प्रमाण है, ऐसा कहकर हंसिका शीघ्र जाकर सुरसुन्दरी के पास बैठी।

गाथा :-

सद्भाव-नेह-सुयग-वीसंभ-कहाहिं विविह-भणिईहिं ।

उप्याइय वीसंभं भणिया सुरसुंदरी तीए ॥१६६॥

संस्कृत छाया :-

सद्भावेस्नेहसूचकविश्रम्भकथाभिर्विविधभणितिभिः ।

उत्पाद्य विश्रम्भं भणिता सुरसुन्दरी तथा ॥१६६॥

गुजराती अनुवाद :-

सद्भाव अने स्नेहसूचक सवी केटलीक विविध वातो वड़े विश्वास पैदा कयी ते हंसिकाए सुरसुंदरी ने पूछ्युं-

हिन्दी अनुवाद :-

सद्भाव और प्रेमपरक ऐसी कई बातों से विश्वास पैदा करने के बाद हंसिका ने सुरसुन्दरी से पूछा।

गाथा :-

सुरसुंदरि! तुह चरियस्स निसुणणे अत्थि कोउगं मज्झ ।

कह केण किं निमित्तं अवहरिया किंच अणुभुयं? ॥१६७॥

संस्कृत छाया :-

सुरसुन्दरि ! तव चरितस्य निश्रवणेऽस्ति कौतुकं मम ।

कथं केन किं निमित्तमपहता किञ्चाऽनुभूतम् ? ॥१६७॥

गुजराती अनुवाद :-

हे सुरसुंदरी! तारुं चरित्र सांभलवानी मने उत्कंठा छे. कोना वडे कया निमित्ते तारु अपहरण करायुं अने तने शु अनुभव थयो छे?

हिन्दी अनुवाद :-

हे सुरसुन्दरी! आपका चरित्र सुनने की हमारी इच्छा है। किस प्रकार, किस कारण से आपका अपहरण किया गया और आपको कैसा अनुभव हुआ है?

गाथा :-

सुरसुंदरीए भणियं ताएणवि आसि पुच्छिया एव ।

किं पुण लज्जाए मए न सक्कियं तत्थ वज्जरिऊं ॥१६८॥

संस्कृत छाया :-

सुरसुन्दर्या भणितं तातेनाऽपि आसीत् पृष्टा एव ।

किं पुनर्लज्जया मया न शक्यं तत्र कथयितुम् ॥१६८॥

गुजराती अनुवाद :-

सुरसुंदरीए कह्युं—“पितास पण मने पूछयुं हतुं पण लज्जा वडे तेमने कहेवा हुं समर्थ न थई!”

हिन्दी अनुवाद :-

सुरसुन्दरी ने कहा, -पिताजी ने भी मुझसे पूछा था किन्तु लज्जा के कारण मैं उनसे कहने में समर्थ नहीं हो सकी।

गाथा :-

किंच।

मह चरियं सुम्मंतं जणेई पास-द्वियाणवि दुक्खं ।

तेण न वोत्तुं जुत्तं मज्झवि गुरु-दुक्ख-संजणगं ॥१६९॥

संस्कृत छाया :-

किञ्च ।

मम चरितं श्रूयमाणं जनयति पार्श्वस्थितानामपि दुःखम् ।

तेन न वक्तुं युक्तं ममाऽपि गुरुदुःखसञ्जनकम् ॥१६९॥

गुजराती अनुवाद :-

'वळी, हे सखी! मारुं चटित्र पासे रहीने सांभळजाए ने पण दुःख पेदा करे छे। तेथी अति दुःखकारक खो ते वृत्तांत कहेवो मने योग्य नथी।

हिन्दी अनुवाद :-

हे सखी! हमारा चरित्र पास में रहकर सुनने वाले को भी दुःखी कर देता है। इसलिए अति दुःख पैदा करनेवाले ऐसे वृत्तान्त कहने के योग्य मैं नहीं हूँ।

गाथा :-

तहवि हु तुमए पुड्डा वयंसि! कोऊहलेण गरुएण ।
साहेमि तेण निसुणसु एग-मणा वज्जरिज्जंतं ॥१७०॥

संस्कृत छाया :-

तथापि खलु त्वया पृष्टा वयस्ये ! कुतूहलेन गुरुणा ।
कथयामि तेन निश्रुणु एकमनाः कथ्यमानम् ॥१७०॥

गुजराती अनुवाद :-

सुटसुंदरी वृत्तांत

तो पण, हे सखी! घणा कुतूहल वडे ते मने पूछ्युं छे तेथी कहुं छुं।
तो ते कहेवातो वृत्तांत एकाग्रता पूर्वक सांभळ।

हिन्दी अनुवाद :-

फिर भी हे सखी! बड़े कुतूहल के साथ तुमने पूछा है, इसलिए कह रही हूँ, कहे हुए वृत्तान्त को एकाग्रता पूर्वक सुनो।

गाथा :-

अत्थि पुहई-पयासं निरग्गलोदग्ग-वग्गिर-तुरंगं ।
वग्गिर-तुरंग-खर-खुरुक्खय-खेहाइन्न-रिक्ख-पहं ॥१७१॥
रिक्खपह-पवण-कंपिर-धय-वड-रेहंत-भूरि-साणूरं ।
साणूर-गहिर-वज्जर-तूर-रवुप्फुण्ण-दिसि-चक्कं ॥१७२॥
दिसि-चक्क-गेय-सत्थाह सत्थ-किज्जंत-वज्ज-वाणिज्जं ।
वाणिज्ज-कला-पत्तट्ट-लट्ट-वाणियग-रमणीयं ॥१७३॥

રમણીયણ-વર-વજ્જર-નેર-ઝંકાર-રુદ્ધ-સુઙ્ગ-વિવરં ।
 વિવરીય-રય-વિયક્ષણ-વિલાસિણી-લોય-પડિપુત્રં ॥૧૭૪॥
 પુન્નુક્કડ-જણ-વાસં ઇભ્મ-સહસ્સોવસોહિયં વિઝલં ।
 વિઝલ-રસા-ચલ-પરિગય-પરિહા-પાયાર-સોહિલ્લં ॥૧૭૫॥
 સોહિલ્લ-તિય-ચઝવ્કં ઝવ્કડ-દપ્પિટ્ટુ-જોહ-સય-કલિયં ।
 નામેણ કુસગ્ગપુરં નયરં દિય-લોય-સારિચ્છં ॥૧૭૬॥

સંસ્કૃત છાયા :-

અસ્તિ પૃથિવીપ્રકાશં નિરર્ગલોદગ્રવેગવત્તુરઙ્ગમ્ ।
 વેગવત્તુરઙ્ગચ્ચરચ્ચુરોત્ત્રાતચ્ચેહા (ધૂલી)ઽઽકીર્ણર્ક્ષપથમ્ ॥૧૭૭॥
 ઋદ્ધક્ષપથપવનકમ્પવત્ધ્વજપટરાજમાનભૂરિસાણૂરં (દેવગૃહમ્) ।
 સાણૂરગધીરવદિતૃતૃર્યરવોત્ત્ફુણ્ણ(પૂર્ણ)દિક્ચક્રમ્ ॥૧૭૮॥
 દિક્ચક્રગેયસાર્થવાહસાર્થક્રિયમાણવર્યવાણિજ્યમ્ ।
 વાણિજ્યકલાપ્રાપ્તાર્થલટ્ટુ(લટ્ટ)વાણિજકરમણીયમ્ ॥૧૭૯॥
 રમણીજનવરવદિતૃનુપુરઙ્ગકારરુદ્ધશ્રુતિવિવરમ્ ।
 વિપરીતરતવિચક્ષણવિલાસિનીલોકપ્રતિપૂર્ણમ્ ॥૧૮૦॥
 પુણ્યોત્કટજનવાસં ઇધ્મ્યસહગ્રોપશોભિતં વિપુલમ્ ।
 વિપુલરસાતલપરિગતપરિગ્રાપ્રાકારશોભાવદ્ ॥૧૮૧॥
 શોભાવત્રિકચતુષ્કં, ઉત્કટદર્પિષ્ટયોધશતકલિતમ્ ।
 નાન્મા કુશાગ્રપુરં નગરં દેવલોકસદ્ધક્ષમ્ ॥૧૮૨॥ ષ્ષ્મિઃ કુલકમ્

ગુજરાતી અનુવાદ :-

કુશાગ્રપુર નગર

પૃથ્વી ને વિષે પ્રકાશમાન, નિરંતર ઉત્તમ વેગવાળા અશ્વોથી યુક્ત,
 વેગવાળા ઘોડાની પ્રચંડ ચ્ચરી થી ઝડતી રજકળો થી વ્યાપ્ત કર્યો છે આકાશ
 માર્ગ જેવો... ગગન માર્ગ માં પવન થી ઝોલતી ધ્વજપટથી શોભતા દેવાલય જેમાં
 છે, દેવાલયો માં ગંભીર વાગતાં વાજીંત્રો ના નાદ વડે પૂરાયા છે દિશાના ભાગ
 જેમાં... દરેક દિશાઓ માં ધનાઢ્ય સાર્થવાહ ના સમૂહ વડે જ્યાં વ્યાપાર કરાયા
 છે, વાણિજ્ય કલા માં કુશલ સવાં શ્રેષ્ઠ વણિકજનો થી વિશ્ભૂષિત, રમણી જનો
 ના વાગતા નૂપુર ના ઝંકાર ના નાદ થી કાન ને ચ્ચિદિત કરતું, વિપરીત સ્વી
 મૈથુન ક્રીડા માં નિપુણ સ્વી વિલાસીની લોક વડે પરિપૂર્ણ... પુણ્યનિષ્ઠ

પરાકાષ્ટાવાલા લોકો નો જેમાં વાસ છે, હજારો શ્રેષ્ઠિઓ વડે શોભાયમાન વિશાલ...વિશાલ રસાતલ ઉપર રહેલી પરિચ્છા તથા કિલ્લાઓથી સુશોભિત... ત્રિક અને ચતુષ્ક થી મનોહર... પરાક્રમ ના ગર્વ થી ઉત્કૃષ્ટ સૈંકડો સુશ્ભટો થી વ્યાપ્ત... તેમ જ દેવપુરી સમાન કુશાગ્રપુર નામ નું નગર છે.

હિન્દી અનુવાદ :-

કુશાગ્રપુર નગર- પૃથ્વી પર પ્રકાશમાન ઉત્તમવેગ વાલે ઘોડોં સે યુક્ત. ડનકી ખરી સે ડડતે ધૂલકળોં સે વ્યાપ્ત કર દિયા હૈ આકાશમાર્ગ જિસને, જિસમેં આકાશ મેં પવન સે ડડતે ધ્વજ પતાકાઓં સે શોભિત દેવાલય હૈં, જહાં દેવાલયોં મેં બજ રહે ગમ્મીર વાઘયન્ત્રોં સે દિશાઈ આપૂરિત હૈં, જહાં પ્રત્યેક દિશાઓં મેં ધનાઢ્ય વ્યાપારિયોં કા સમૂહ વ્યાપાર કરતા હૈ, શ્રેષ્ઠ વણિકજનોં સે વિભૂષિત, જહાં રમણિયોં કે નૂપુર કે ઙ્કાર સે કાન મી બહરે હો જાયેં, જહાં વિપરીત ઔર મૈથુન ક્રીડા મેં નિપુણ ઈસે વિલાસી લોગ મરે હુઈ હૈં, પુણ્ય કી પરાકાષ્ટા વાલે લોગોં કા જિસમેં વાસ હૈ, જો હજારોં શ્રેષ્ઠિયોં સે શોભિત હૈ, જો વિશાલ રસાતલ ડપર પરિચ્છા ઔર કિલોં સે સુશોભિત ત્રિક ઔર ચતુષ્ક સે મનોહર હૈ, પરાક્રમ કે ગર્વ સે ગર્વિત સૈકડોં વીરોં સે વ્યાપ્ત દેવપુરી સમાન કુશાગ્રપુર નામ કા શહર હૈ.

ગાહા :-

અવ્કંત-ગુરુ-પરવ્કમ-અચ્ચંતુવ્કડ-પયાવ-પડિવવ્ક્રો ।

તત્થત્થિ સુવિવ્ક્રાઓ રાયા નરવાહનો નામ ।।૧૭૭।।

સંસ્કૃત છાયા :-

આક્રાન્તગુરુપરાક્રમાત્યન્તોત્કટપ્રતાપપ્રતિપક્ષઃ ।

તત્રાઽસ્તિ સુવિચ્છ્યાતો રાજા નરવાહનો નામા ।।૧૭૭।।

ગુજરાતી અનુવાદ :-

તે કુશાગ્રપુર નગરમાં ઉત્તમ વેગ વડે નિર્મૂલ કર્યા છે મહાપ્રતાપવાલા શત્રુઓ જેણે સવો સુપ્રસિદ્ધ નરવાહન નામે રાજા રાજ્ય કટે છે.

હિન્દી અનુવાદ :-

ડસ કુશાગ્રપુર મેં સુપ્રસિદ્ધ નરવાહન નામક રાજા રાજ્ય કરતે હૈં જો અત્યન્ત પરાક્રમી હૈં તથા મહાપ્રતાપી શત્રુઓં કો મી ધરાશાયી કર દેને વાલે હૈં.

गाहा :-

तस्स य रत्नो मित्तो कुमारभावम्मि कहवि संजाओ ।
वेयङ्क-कुंजरावत्त-चित्तभाणुस्स अंगरुहो ॥१७८॥

संस्कृत छाया :-

तस्य च राज्ञो मित्रं कुमारभावे कथमपि सञ्जातः ।
वैताढ्यकुञ्जरावर्तचित्रभानोरङ्गरुहः ॥१७८॥

गुजराती अनुवाद :-

हवे वैताढ्य पर्वत ने विषे कुंजरावर्त नगर मां चित्रभानु ना पुत्रनी
साथे, ते नरवाहन राजा ने कोइपण कारणे कुमारपणा मां मित्रता थइ.

हिन्दी अनुवाद :-

वैताढ्य पर्वत के कुंजरावर्त नगर में चित्रभानु के पुत्र के साथ उस नरवाहन
राजा की किसी प्रकार मित्रता हो गयी।

गाहा :-

नामेण भाणुवेगो तेण य पीई-थिरत्तण-निमित्तं ।
दिन्ना नियया भगिणी रयणवई नाम एयस्स ॥१७९॥

संस्कृत छाया :-

नाम्ना भानुवेगस्तेन च प्रीतिस्थिरत्वनिमित्तम् ।
दत्ता निजका भगिनी रत्नवती नाम्नी एतस्मै ॥१७९॥

गुजराती अनुवाद :-

परस्पर प्रीतिनी स्थिरता माटे नरवाहन राजाए ते भानुवेग ने पोतानी
रत्नवती नाम्नी चहेन ने परणावी.

हिन्दी अनुवाद :-

परस्पर प्रेम को और स्थिर बनाने के लिए नरवाहन राजा ने भानुवेग के साथ
अपनी बहन रत्नवती का विवाह कर दिया।

गाहा :-

सयलंतैउर-पवरा जाया सा तस्स हियथ-वल्लहिया ।
तीइ सह विसय-सोक्खं अणुहवमाणस्स कालेणं ॥१८०॥

संस्कृत छाया :-

सकलान्तःपुरप्रवरा जाता सा तस्य हृदयवल्लभा ।

तया सह विषयसौख्यमनुभवतः कालेन ॥१८०॥ युग्मम् ॥

गुजराती अनुवाद :-

रत्नवती राजा (नरवाहन) ना सम्भस्त अंतःपुर मां मुख्य थइ, राजा ने अत्यंत प्रिय रवी तेनी साथे विषयसुख भोगवता केटलाक समये..

हिन्दी अनुवाद :-

रत्नवती नरवाहन राजा के अन्तःपुर की मुख्य रानी हो गयी। राजा को अत्यन्त प्रिय उस रानी के साथ उन्होंने बहुत समय तक सुख भोगा।

गाहा :-

एक्कच्चिय धूया हं जाया जम्मम्मि मज्झ ताएण ।

सुय-जम्मण-अब्भहिओ नयरम्मि महोच्छवो विहिओ ॥१८१॥

संस्कृत छाया :-

एकैव दुहिताऽहं जाता जन्मनि मम तातेन ।

सुतजन्माभ्यधिको नगरे महोत्सवो विहितः ॥१८१॥

गुजराती अनुवाद :-

हूं एक ज पुत्री थई, पितास माटा जन्म समये पुत्र-जन्मथी पण अधिक महोत्सव नगरयां कर्यो.

हिन्दी अनुवाद :-

उन्हें मैं एक ही पुत्री हुई। पिता ने मेरे जन्म पर पुत्र जन्म पर जो महोत्सव होता है, उससे भी बड़ा महोत्सव किया।

गाहा :-

सुरसुंदरि-सम-रूवा एसा इइ चिंतिऊण ताएण ।

सुरसुंदरिति नामं पइट्टियं उचिय-समयम्मि ॥१८२॥

संस्कृत छाया :-

सुरसुन्दरीसमरूपैषा इति चिन्तयित्वा तातेन ।

सुरसुन्दरीति नाम प्रतिष्ठितमुचितसमये ॥१८२॥

गुजराती अनुवाद :-

आ देवांगना समान रूपवाळी छे, सम विचाटी पितास योग्य समये मार
'सुरसुंदरी' स प्रमाणे नाम पाड्युं.

हिन्दी अनुवाद :-

यह सोचकर कि यह देवांगना समान रूपवती है, इसलिए पिता ने मेरा नाम सुरसुन्दरी रखा।

गाहा :-

कमसो पवड्डमाणा कुमारभावमि जुवइ जोगगाओ ।

गाहाविया कलाओ जाया य क्रमेण तक्कुसला ॥१८३॥

संस्कृत छाया :-

क्रमशः प्रवर्धमाना कुमारभावे युवतियोग्याः ।

ग्राहिताः कला जाता च क्रमेण तत्कुशलाः ॥१८३॥

गुजराती अनुवाद :-

अनुक्रमे वृद्धि पावती में कुमार पणा मां युवति ने योग्य कलाओ ग्रहण
करी अने क्रमपूर्वक तेमां कुशल बनी।

हिन्दी अनुवाद :-

क्रम से बढ़ती हुई कुमारपने में ही मैं युवायोग्य कलाओं को ग्रहण कर
उसमें प्रवीण हो गयी।

गाहा :-

अविय।

वित्ते नट्टे गीए पत्त-च्छेज्जे य हत्थ-कंडेसु ।

वीणा-सर-लक्खण-वंजणेसु वायरण-तक्केसु ॥१८४॥

जाया वियक्खणा हं बुद्धीए सुर-गुरुस्स सारिच्छा ।

एक्कम्मि पए लद्धे सेसं ऊहेमि लद्धीए ॥१८५॥

संस्कृत छाया :-

अपि च ।

वृत्ते नाट्ये गीते पत्रच्छेद्ये च हस्तकाण्डेषु ।

वीणास्वरलक्षणव्यञ्जनेषु व्याकरणतर्केषु ॥१८४॥

जाता विचक्षणाऽहं बुद्ध्या सुरगुरोः सद्यक्षा ।

एकस्मिन् पदे लब्धे शेषमूहे लब्ध्या ॥१८५॥

गुजराती अनुवाद :-

तेम ज वार्ता, नाट्य, गीत, पत्रच्छेद, हस्तकांड (हस्तकला) वीणा, स्वर, लक्षण (शास्त्र), व्यंजन (पाकशास्त्र), व्याकरण, न्यायशास्त्र आदि मां हूं विचक्षण थीई, बुद्धिमां बृहस्पति समान गणावा लागी, श्लोक ना सक पद परथी चाकी नो श्लोक लब्धि वडे पूर्ण करी शकवा समर्थ बनी।

हिन्दी अनुवाद :-

उसमें वार्ता, नाट्य, गीत, पत्रच्छेद, हस्तकला, वीणा, स्वर, लक्षण शास्त्र, पाकशास्त्र, व्याकरण, न्यायशास्त्र आदि में...

मैं विचक्षण हो गयी। बुद्धि में बृहस्पति के समान गिनी जाने लगी। श्लोक के एक पद से सम्पूर्ण श्लोक को बताने में समर्थ बन गयी।

गाहा :-

अंबाए तायस्स य सयलस्स य परियणस्स आणंदं ।

कुणमाणा संपत्ता कमसो हं जोव्वणं पढमं ॥१८६॥

संस्कृत छाया :-

अम्बायास्तातस्य च सकलस्य परिजनस्याऽऽनन्दम् ।

कुर्वन्ती सम्प्राप्ता क्रमशोऽहं यौवनं प्रथमम् ॥१८६॥

गुजराती अनुवाद :-

माता-पिता तथा सकल परिवार ने आनंद आपती अनुक्रमे हूं नवीन यौवन ने पायी।

हिन्दी अनुवाद :-

माता-पिता और पूरे परिवार को आनन्द देती मैं क्रम से युवा हो गयी।

गाहा :-

ददूण जोव्वणं मह ताओ चिंताउरो दढं जाओ ।

को अणुरूवो होही भत्ता इह मज्झ धूयाए? ॥१८७॥

संस्कृत छाया :-

छष्ट्वा यौवनं मम तातश्चिन्तातुरो ह्यं जातः ।

कोऽनुरूपो भविष्यति भर्तेह मम दुहितुः ? ॥१८७॥

गुजराती अनुवाद :-

पिता नी चिंता

मारुं खीलोलुं यौवन जोइने पिताजी खूब चिंता करवा लाग्या, के 'माटी पुत्री नो उचित भर्ता कोण थशे?

हिन्दी अनुवाद :-

पिता की चिन्ता-

मेरे खिले यौवन को देखकर पिताजी खूब चिन्ता करने लगे कि मेरी पुत्री के लिए उचित वर कौन होगा?

गाहा :-

अह अन्नया य सुमई नेमिती आगओ तहिं रन्ना ।

पुट्टो मह धूयाए को होही भद्र! भत्तारो? ॥१८८॥

संस्कृत छाया :-

अथाऽन्यदा च सुमति-नैमित्तिक आगतो तदा राज्ञा ।

पृष्टो मम दुहितुः को भविष्यति भद्र ! भर्ता ? ॥१८८॥

गुजराती अनुवाद :-

हवे कोई समये सुमति नामे एक नैमित्तिक आव्यो, त्याटे राजास पूछ्युं हे भद्र! माटी कन्या नो भर्ता कोण थशे?

हिन्दी अनुवाद :-

किसी समय वहाँ सुमति नाम का एक नैमित्तिक आया। तब उससे राजा ने पूछा हे भद्र! मेरी कन्या का पति कौन होगा?

गाहा :-

भणियं च तेण नर-वर! विज्जाहर-चक्कवट्टिणो एसा ।

होही सयलंतेउर-पवरा अइवल्लहा देवी ॥१८९॥

संस्कृत छाया :-

भणितं च तेन नरवर ! विद्याधरचक्रवर्तिन एषा ।

भविष्यति सकलान्तःपुरप्रवराऽतिवल्लभा देवी ॥१८९॥

गुजराती अनुवाद :-

नैमित्तिके कह्युं— 'हे राजन्! विद्याधरो ना चक्रवर्तीना सकल अंतःपुर म्मां श्रेष्ठ तथा अतिवल्लभ देवी थसे.'"

हिन्दी अनुवाद :-

नैमित्तिक ने कहा, 'हे राजन्! विद्याधरों के चक्रवर्ती के पूरे अन्तःपुर में श्रेष्ठ तथा अतिवल्लभ देवी होगी।

गाहा :- व्वयणं सोऊणं मणम्मि आणंदिएण ताएण ।

दाऊण भूरि-दव्वं पडुविओ सुमइ नेमित्ती ॥१९०॥

संस्कृत छाया :-

तद्वचनं श्रुत्वा मनस्यानन्दितेन तातेन ।

दस्त्वा भूरिद्रव्यं प्रस्थापितः सुमतिर्नैमित्तिकः ॥१९०॥

गुजराती अनुवाद :-

नैमित्तिक नुं ते वचन सांभलीने मनम्मां आनंद पामेला राजास घणुं द्रव्य आपी ने सुमति नैमित्तिक ने विदाय आपी.

हिन्दी अनुवाद :-

नैमित्तिक का वचन सुनकर मन में आनन्दित राजा ने सुमति नैमित्तिक को अधिक द्रव्य देकर विदा किया।

गाहा :-

अह अन्नया य अहयं परियरिया बहुविहाहिं चेडीहिं ।

निय-सहि-यण-संजुत्ता पत्ता पुर-बाहिरुज्जाणे ॥१९१॥

संस्कृत छाया :-

अथान्यदा च अहं परिवृता बहुविधाभिश्चेटीभिः ।

निजसखीजनसंयुक्ता प्राप्ता पुरबाह्योद्याने ॥१९१॥

गुजराती अनुवाद :-

प्रियंवदा नुं मिलन

हवे कोई समये अनेक प्रकार नी दासीओथी परिवरेली हुं पोतानी सखीओ सहित नगर नी बहार उद्यानम्मां गई हती।

हिन्दी अनुवाद :-

प्रियंवदा का मिलन-

एक बार मैं अनेक प्रकार की दासियों से युक्त अपनी सखियों सहित बाहर उद्यान में गयी थी।

गाथा :-

तत्थ य विविह-पगारं कीडंतीए तदेग-देसम्मि ।

दिट्ठा पढम-वयत्था विज्जाहर-बालिया एक्का ॥१९२॥

संस्कृत छाया :-

तत्र च विविधप्रकारं क्रीडयन्त्या तदेकदेशे ।

दृष्टा प्रथमवयःस्था विद्याधरबालिकैका ॥१९२॥

गुजराती अनुवाद :-

त्यां विविध प्रकार नी क्रीडा करतां-करतां मे सकांत स्थान मां रहेली नवयौवना एक विद्याधर नी कन्या जोई।

हिन्दी अनुवाद :-

वहाँ अनेक प्रकार की क्रीड़ा करती-करती मैं एकान्त स्थान में बैठी एक युवा विद्याधर की कन्या को देखी।

गाथा :-

परिजविय किंचि मंतं उप्पइउ-मणा पसारइ भुयाओ ।

उल्ललइ नह-यलम्मि निवडइ धरणीइ पुणरुत्तं ॥१९३॥

संस्कृत छाया :-

परिजप्य किञ्चिद् मन्त्रमुत्पतितुमनाः प्रसारयति भुजे ।

उल्ललति नभस्तले निपतति धरण्यां (पुण रुत्तं) वारंवारम् ॥१९३॥

गुजराती अनुवाद :-

ते विद्याधर कन्या कोई मंत्रनी जाप करी आकाशमां उडवा भुजाओ ऊंची करती हती, ऊपर आकाश मां उछळी फरी-फरी पृथ्वी ऊपर पडती हती!

हिन्दी अनुवाद :-

वह विद्याधर कन्या किसी मंत्र का जाप करते हुए आकाश में उड़ने के लिए अपनी दोनों भुजाएँ ऊपर करती थी और आकाश में उछल-उछल कर नीचे जमीन पर गिर पड़ती थी।

गाहा :-

तं ददुं विम्हिया हं संपत्ता तीइ अंतियं तुरियं ।

भणिया य मए सुंदरि! का सि तुमं किंच कुणसि इमं? ॥१९४॥

संस्कृत छाया :-

तां दृष्ट्वा विस्मिताऽहं सम्प्राप्ता तस्या अन्तिकं त्वरितम् ।

भणिता च मया सुन्दरि ! काऽसि त्वं किञ्च करोषीदम् ? ॥१९४॥

गुजराती अनुवाद :-

तेनी आवी चीत जोई ने मने खूब आश्चर्य थयुं अने तरत तेनी पासे
गई. अने में कह्युं हे सुंदरी! तुं कोण छे? अने आ शुं कटे छे?

हिन्दी अनुवाद :-

उसे इस प्रकार देखकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ मैं तुरन्त उसके पास गयी
और बोली हे सुन्दरी! तुम कौन हो और यह क्या कर रही हो?

गाहा :-

तीए भणियं भद्दे! आयन्नसु, गिरि-वरम्मि वेयड्ढे ।

दक्खिण-सेढीए रयणसंचयं अत्थि वर-नयरं ॥१९५॥

संस्कृत छाया :-

तया भणितं भद्रे ! आकर्णय गिरिवरे वैताढ्ये ।

दक्षिणश्रेण्यां रत्नसञ्चयमस्ति वरनगरम् ॥१९५॥

गुजराती अनुवाद :-

तेणीए कह्युं हे भद्रे! तुं सांभळ! वैताढ्य पर्वत पर दक्षिण श्रेणि मां
रत्नसंचय नामनुं उत्तम नगर छे.

हिन्दी अनुवाद :-

उसने कहा, 'हे भद्रे! सुनो। वैताढ्य पर्वत के दक्षिण श्रेणी में रत्नसंचय
नाम का उत्तम नगर है।

गाहा :-

विज्जाहर-वर-चक्की राया तत्थत्थि चित्तवेगोत्ति ।

राया य भाणुवेगो अत्थि पुरे कुंजरावत्ते ॥१९६॥

संस्कृत छाया :-

विद्याधरवरचक्री राजा तत्रास्ति चित्रवेग इति ।

राजा च भानुवेगोऽस्ति पुरे कुञ्जरावर्ते ॥१९६॥

गुजराती अनुवाद :-

'त्यां विद्याधरो नो चक्रवर्ती चित्रवेग नाम नो राजा छे, अने कुंजरावर्तमां भानुवेग नामनो राजा छे.'

हिन्दी अनुवाद :-

वहाँ विद्याधरों का चक्रवर्ती चित्रवेग नाम का राजा है और कुंजरावर्त में भानुवेग नाम का राजा है।

गाहा :-

तस्स य दो भगिणीओ सहोयराओ य अईव इट्ठाओ ।

पढमा ओ बंधुदत्ता रयणवई नाम बीया उ ॥१९७॥

संस्कृत छाया :-

तस्य च द्वे भगिन्यौ सहोदरे चातीवेषे ।

प्रथमा ओ ! बन्धुदत्ता रत्नवती नाम द्वितीया तु ॥१९७॥

गुजराती अनुवाद :-

'भानुवेग ने छे सगी बहेनो छे, तेने ते बहेनो अतीव प्रिय छे. तेमां सक नुं नाम बंधुदत्ता अने बीजी नु नाम रत्नवती छे.'

हिन्दी अनुवाद :-

भानुवेग की दो सगी बहने हैं। उन्हें वे बहनें बहुत प्रिय हैं, उनमें एक का नाम बंधुदत्ता और दूसरी का नाम रत्नवती है।

गाहा :-

सा सुयणु! बंधुदत्ता परिणीया चित्रवेग-नरवइणा ।

तीए धूया अहयं नामं च प्रियंवया मज्झ ॥१९८॥

संस्कृत छाया :-

सा सुतनो ! बन्धुदत्ता परिणीता चित्रवेगनरपतिना ।

तस्या दुहिताऽहं नाम च प्रियंवदा मम ॥१९८॥

गुजराती अनुवाद :-

हे सुतनु! ते बंधुदत्ता चित्रवेग राजा ने परणी छे. तेनी हूं पुत्री छूं.
अने मारु नाम प्रियंवदा छे.

हिन्दी अनुवाद :-

हे सुतनु! वह बन्धुदत्ता चित्रवेग राजा के साथ ब्याही है। उनकी मैं पुत्री हूँ और मेरा नाम प्रियंवदा है।

गाहा :-

अन्नावि महा-देवी तायस्स उ अत्थि कणगमालत्ति ।
तीए य अत्थि पुत्तो नामेणं मयरकेउत्ति ॥१९९॥

संस्कृत छाया :-

अन्याऽपि महादेवी तातस्य त्वस्ति कनकमालेति ।
तस्याश्चास्ति पुत्रो नाम्ना मकरकेतुरिति ॥१९९॥

गुजराती अनुवाद :-

तथा मारा पिता ने बीजी पण कनकमाला नामनी मुख्य राणी छे, तेने
मकरकेतु नामनो पुत्र छे.

हिन्दी अनुवाद :-

तथा मेरे पिता की कनकमाला नाम की एक और मुख्य रानी है जिसका
मकरकेतु नाम का पुत्र है।

गाहा :-

सो मह अईव इट्ठो विरहं न सहामि तस्स निमिसंपि ।
संपइ पुण ताएणं दिन्नाओ तस्स विज्जाओ ॥२००॥

संस्कृत छाया :-

स ममातीवेष्टो विरहं न सहे तस्य निमेषमपि ।
सम्प्रति पुनस्तातेन दत्तास्तस्मै विद्याः ॥२००॥

गुजराती अनुवाद :-

ते मकरकेतु मने बहुत ज प्रिय छे. निमेष मात्र पण तेना वियोग ने
हूं सहन करी शकती नथी, वळी हमणां मारा पिताए तेने विद्याओ आपेली छे.

हिन्दी अनुवाद :-

वह मकरकेतु मुझे बहुत प्रिय है। क्षण भर के लिए भी मैं उसका वियोग सहन नहीं कर पाती। अभी मेरे पिता ने उसे विद्या दी है।

गाथा :-

विज्जाण साहणात्थं पसत्त-खित्तम्मि सो गओ विजणे ।

जह-भणिय-विहाणेणं साहइ सो तत्थ विज्जाओ ॥२०१॥

संस्कृत छाया :-

विद्यानां साधनार्थं प्रज्ञास्तक्षेत्रे स गतो विजने ।

यथाभणितविधानेन साधयति स तत्र विद्याः ॥२०१॥

गुजराती अनुवाद :-

विद्याओ साधवा माटे पवित्र क्षेत्रमां ते उक्तांत मां गयो छे त्यां ते शास्त्रोक्त विधि प्रमाणे विद्याओ साथे छे।

हिन्दी अनुवाद :-

विद्या को साधने के लिए वह एकान्त स्थान में गया है। वहाँ वह शास्त्रोक्त विधि के अनुसार विद्या की साधना कर रहा है।

गाथा :-

वट्टइ बीओ मासो विज्जाओ तस्स साहयंतस्स ।

अहमवि तस्स विओगे तरामि नो जाव अच्छेउं ॥२०२॥

संस्कृत छाया :-

वर्तते द्वितीयो मासो विद्यास्तस्य साधयतः ।

अहमपि तस्य वियोगे शक्नोमि नो यावदासितुम् ॥२०२॥

गुजराती अनुवाद :-

विद्या साधतां तेने बीजो महिनो चाले छे हुं पण तेना वियोग मां रडेवा समर्थ न छनी!

हिन्दी अनुवाद :-

विद्या साधते उसका दूसरा महीना है। मैं उसके वियोग में रहने में समर्थ नहीं हो पायी।

गाहा :-

ता पुच्छिऊण जणगं चलिया हं तस्स दरिसण-निमित्तं ।

आगमण-परिस्संता ओइन्ना इत्थ उज्जाणे ॥२०३॥

संस्कृत छाया :-

तस्मात् पृष्ट्वा जनकं चलिताऽहं तस्य दर्शननिमित्तम् ।

आगमनपरिश्रान्ताऽवतीर्णाऽत्रोद्याने ॥२०३॥

गुजराती अनुवाद :-

तेथी पिताजी ने पूछी ने तेना दर्शन माटे हुं नीककी अने मार्गथी थाकेली
हुं आ उद्यान मां उतरी छुं.

हिन्दी अनुवाद :-

इसलिए पिताजी से पूछकर उसके दर्शन के लिए निकली मैं मार्ग में थककर
इस उद्यान में उतरी हूँ।

गाहा :-

अहिणव-पढियत्तणओ विज्जाए कहवि मज्झ पयमेगं ।

पम्हुट्टमहन्नाए तेण य न चएमि उप्पइउं ॥२०४॥

संस्कृत छाया :-

अभिनवपठितत्वतो विद्यायाः कथमपि मम पदमेकम् ।

(पम्हुट्ट) विस्मृतमधन्ययास्तेन च न शक्नोम्युत्पतितुम् ॥२०४॥

गुजराती अनुवाद :-

नवा अभ्यास ना कारणे ते विद्यानुं एक पद हुं भूली गई छुं तेथी
मंदभाग्यवाली हुं आकाशमां उडवा माटे शक्तिमान नथी.

हिन्दी अनुवाद :-

नये अभ्यास के कारण उस विद्या का एक पद मैं भूल गयी हूँ। इसलिए
मंद भाग्य वाली मैं उड़ने में समर्थ नहीं हूँ।

गाहा :-

तं जं तुमए पुट्टं तं एयं साहियं सुयणु! तुज्झ ।

विज्जा-वयस्स भंसे स-ट्ठाणं कहणु पाविस्सं? ॥२०५॥

संस्कृत छाया :-

तद् यत्त्वया पृष्ठं तदेतद् कथितं सुतनो ! तव ।

विद्यापदस्य भ्रंसे स्वस्थानं कथं नु प्राप्स्यामि ? ॥२०५॥

गुजराती अनुवाद :-

हे सुतनो! ते जे पूछ्युं तेनो में तने उत्तर आप्यो, हवे विद्यानु विस्मरण थये छते हुं पोताना स्थान मां केवी रीते पहाँचु?

हिन्दी अनुवाद :-

हे देवी! तुमने जो पूछा उसका मैंने उत्तर दिया। अब विद्या भूल जाने के बाद मैं अपने स्थान पर कैसे पहुँचूँ?

गाहा :-

पुणरुत्तंपि हु पढिए संभरइ न मज्झ तं पर्यं कहवि ।

उत्तरु-मय-सिलिंबच्छि! तेणमहमाउला जाया ॥२०६॥

संस्कृत छाया :-

वारंवारमपि खलु पठिते संस्मरति न मम तद् पदं कथमपि ।

उत्तरस्तमृग (सिलिंब) शावाक्षि ! तेनाऽहमाकुला जाता ॥२०६॥

गुजराती अनुवाद :-

ते विद्यानुं पद चारंघार बोलवा छतां याद आवतुं ज नथी, हे मृगाक्षि! तेथी हुं आकुल व्याकुल थइ छुं.

हिन्दी अनुवाद :-

उस विद्या का पद बार-बार बोलने पर भी याद आता ही नहीं है। हे मृगनयनी! इस लिए मैं काफी परेशान हूँ।

गाहा :-

तत्तो य माए भणियं पियंवए! अत्थि तीइ विज्जाए ।

एसो कप्पो जं किल साहिज्जइ हंदि! अन्नस्स? ॥२०७॥

संस्कृत छाया :-

ततश्च मया भणितं प्रियंवदे ! अस्ति तस्या विद्यायाः ।

एष कल्पो यत्किल कथ्यते हन्दि ! अन्यस्य ? ॥२०७॥

गुजराती अनुवाद :-

त्याटे मे कहुं 'हे प्रियंवदे! ते विद्यानो बीजा नी आगल कही शकाय खो जो कल्प होय तो तुं माटी आगल ते मंत्र बोल.

हिन्दी अनुवाद :-

तब मैंने कहा, 'हे प्रियंवदे! उस विद्या को दूसरे के आगे यदि कहा जा सकता हो तो मेरे आगे बोलो'।

गाहा :-

भणियं प्रियंवथाए साहिज्जइ नत्थि कोवि दोसोत्ति ।

जइ एवं ता साहसु मा कहवि पयं उवलभिज्जा ॥२०८॥

संस्कृत छाया :-

भणितं प्रियंवदया कथ्यते नास्ति कोऽपि दोष इति ।

यद्येवं तर्हि कथय मां कथमपि पदमुपलभ्येत ॥२०८॥

गुजराती अनुवाद :-

त्याटे प्रियंवदा बोलो, 'ते बोलवामां कोइ पण प्रकार नो दोष नथी. पछी में कहुं, जो खम होय तो ते मंत्र तुं बोल, तेनुं पद मने कदाच याद आवी जाय.

हिन्दी अनुवाद :-

तब प्रियंवदा ने कहा, 'इसे बोलने में किसी प्रकार का दोष नहीं है'। तब मैंने कहा कि ऐसा है तो वह मन्त्र तू बोल हो सकता है उसका आगे का पद कदाचित् मुझे याद आ जाय।

गाहा :-

एवं च मए भणिए समानसिद्धिंति तीइ भणिरुण ।

ठाऊण कन्न-मूले पठिया सणियं तु सा विज्जा ॥२०९॥

संस्कृत छाया :-

एवं च मया भणिते समानसिद्धिरिति तस्या भणित्वा ।

स्थित्वा कर्णमूले पठिता शनैस्तु सा विद्या ॥२०९॥

गुजराती अनुवाद :-

आ प्रमाणे मे कहुं त्याटे, आपणने बने ने समान लाभ छे. खम कही ते, माटी पासे आवी कान मां धीमे थी ते विद्या बोलो.

हिन्दी अनुवाद :-

इस प्रकार मैंने कहा तो 'इसमें तुम्हारा हमारा दोनों का लाभ है', ऐसा कहती हुई वह मेरे पास आकर कान में धीरे से वह विद्या बोली।

गाथा :-

तत्तो चितंतीए लहुमेव मए तयं पयं लब्धं ।

लहिरुण तीए सिद्धं भवइ इमं किं नु एवति? ॥२१०॥

संस्कृत छाया :-

ततश्चिन्तयन्त्या लघ्वेव मया तत् पदं लब्धम् ।

लब्ध्या तस्यै शिष्टं भवतीदं किन्नु एवमिति ? ॥२१०॥

गुजराती अनुवाद :-

त्याटे विचारतां तरत ज ते विद्यानुं पद मने आवडी गयुं याद करीने में प्रियंवदा ने कह्युं शुं तारुं भूलार्ह गयेलुं पद आ छे?

हिन्दी अनुवाद :-

ऐसा विचार करते हुए तुरन्त उस विद्या का पद मुझे याद आ गया। याद कर मैंने प्रियंवदा से कहा क्या तुम्हारा भूला हुआ पद यह है?

गाथा :-

वियसिय-मुह-कमलाए तीए भणियं तु सुद्ध उवलब्धं ।

चलणेसु निवडिकुणं भणियं मह होसि तं गुरुणी ॥२११॥

संस्कृत छाया :-

विकसितमुखकमलया तथा भणितं तु सुद्धूपलब्धम् ।

चरणयो-निपत्य भणितं मम भवसि त्वं गुर्वी ॥२११॥

गुजराती अनुवाद :-

विकसित मुखवाळी तेणीस कहुं- 'तमने सारुं पद याद आवी गयुं त्यारुखाद चरणमां पडी ने कह्युं 'तमे हवे मारु गुरुणी छे'

हिन्दी अनुवाद :-

तब विकसित मुखवाली उसने कहा, तुम्हें अच्छा पद याद आ गया और उसके पश्चात् मेरे चरणों में गिर कर कहा, 'तुम मेरी गुरुणी' हो।

गाहा :-

जीए विज्जा दिन्ना, ता मह साहेसु तुज्झ किं नामं. ? ।

एत्थ पुरम्मी कस्स व धूया तं सुकय-पुन्नस्स ? ॥ २१२ ॥

संस्कृत छाया :-

यया विद्या दत्ता, तर्हि मम कथय तव किं नाम ? ।

अत्र पुरे कस्य वा दुहिता त्वं सुकृतपुण्यस्य ? ॥ २१२ ॥

गुजराती अनुवाद :-

कारण के तमे विद्या आपी छे, तेयी मने कहो, तमारुं नाम शुं छे?
आ नगर ना क्या पुण्यशाळी नी आप पुत्री छे?

हिन्दी अनुवाद :-

क्योंकि तुमने मुझे विद्या दी है। इसलिए मुझे बताओ तुम्हारा नाम क्या है?
इस नगर के किस पुण्यशाली की तुम पुत्री हो?

गाहा :-

मज्झ सहीए भणियं भद्दे! नरवाहणस्स नरवइणो ।

रयणवइ-देवीए धूया सुरसुंदरी एसा ॥ २१३ ॥

संस्कृत छाया :-

मम सख्या भणितं भद्रे ! नरवाहनस्य नरपतेः ।

रत्नवतीदेव्या दुहिता सुरसुन्दरी एषा ॥ २१३ ॥

गुजराती अनुवाद :-

त्यारे माटी सखीए कहुं— हे भद्रे! नरवाहन राजा नी राणी रत्नवती
देवी नी पुत्री आ सुरसुंदरी छे.

हिन्दी अनुवाद :-

तब मेरी सखी ने कहा, 'हे भद्रे! नरवाहन राजा की रानी रत्नदेवी की यह
सुरसुन्दरी नामक पुत्री है।

गाहा :-

अच्चम्भुय-गुण-नियरा किं न सुया सयल-लोय-विक्खाया ।

विज्जाहर-धूयाए धूया सुरसुंदरी भद्दे!? ॥ २१४ ॥

संस्कृत छाया :-

अत्यद्भुतगुणनिकरा किं न श्रुता सकललोकविख्याता ।

विद्याधरदुहितुर्दुहिता सुरसुन्दरी भद्रे ! ? ॥२१४॥

गुजराती अनुवाद :-

हे भद्रे! विशिष्ट गुण समुदाय थी युक्त सकललोकमां प्रख्यात तथा
विद्याधर नट पुत्री नी पुत्री सवी आ सुरसुन्दरी कन्याने शुं तुं नथी जाणती?

हिन्दी अनुवाद :-

हे भद्रे! विशिष्ट गुणसमूह से युक्त पूरे विश्व में प्रसिद्ध तथा विद्याधर की पुत्री
की पुत्री ऐसी सुरसुन्दरी कन्या को तू क्या नहीं जानती हो?

गाहा :-

एवं तीए वयणं सोऊणं हरिस बाह-पुण्णच्छी ।

गहिऊण मम कंठ पियंवया भणितुमाढत्ता ॥२१५॥

संस्कृत छाया :-

एवं तस्या वचनं श्रुत्वा हर्षबाष्पपूर्णाक्षी ।

गृहीत्वा मम कण्ठे प्रियंवदा भणितुमारब्धा ॥२१५॥

गुजराती अनुवाद :-

आ प्रमाणे तेणीना वचन सांभळीने हर्षश्रुंथी पूर्ण नेत्रवाळी प्रियंवदा मारा
गळे वळगी ने कहेवा लागी!

हिन्दी अनुवाद :-

इस प्रकार उसका वचन सुनकर खुशी के आँसुओं से पूर्ण नेत्रवाली प्रियंवदा
मेरे गले लगकर कहने लगी।

गाहा :-

अंबाए मज्झ पुव्विं वज्जरियं आसि, मज्झ लहु-भगिणी ।

भूमिचर-मित्तस्स उ रत्तो मह भाउणा दिन्ना ॥२१६॥

संस्कृत छाया :-

अम्बया मम पूर्वं कथितमासीत्, मम लघुभगिनी ।

भूमिचरमित्तस्य तु राज्ञो मम भ्रात्रा दत्ता ॥२१६॥

गुजराती अनुवाद :-

माटी मातास मने पहेलां कह्युं हतु के माटी नानी बेन ने मारा भाईस
(भूचर) राजाना मित्र सवा भानुवेग राजा ने आपेली छे.

हिन्दी अनुवाद :-

मेरी माता ने पहले मुझसे कहा था कि मेरी छोटी बहन मेरे भाई (भूचर)
राजा के मित्र, ऐसे भानुवेग राजा को दी गयी है।

गाहा :-

ता मारु-सिया-धूया भगिणी तं होसि मज्झ चंद-मुहि! ।

इय जंपिऊण दिन्नं तीए मह साइयं गरुयं ॥२१७॥

संस्कृत छाया :-

तस्मात् मातृष्वसुदुहिता भगिनी त्वं भवसि मम चन्द्रमुखि ! ।

इति जल्पित्वा दत्तं तया मम स्वागतं गुरुकम् ॥२१७॥

गुजराती अनुवाद :-

तेथी हे चंद्रमुखी! तूं तो माटी मासी नी दीकटी बहेन थाय छे. सम्
कहीने तेणीस माटी बहुत सत्कार कर्यो.

हिन्दी अनुवाद :-

इसलिए हे चन्द्रमुखी! तूं तो मेरी मौसी की लड़की या मौसेरी बहन हो,
ऐसा कहकर उसने मेरा बहुत सत्कार किया।

गाहा :-

तत्तो य मए भणियं आगच्छसु भगिणि! मज्झ गेहम्मि ।

बंधु-जण-वच्छलाए अंबाए दंसणं कुणसु ॥२१८॥

संस्कृत छाया :-

ततश्च मया भणितमागच्छ भगिनि ! मम गेहे ।

बन्धुजनवत्सलाया अम्बाया दर्शनं कुरु ॥२१८॥

गुजराती अनुवाद :-

त्यार पछी में कह्युं- 'हे बहेन! आजे तूं अमार घरे चाल, अने बंधुजन
ने वत्सल सवी माटी माता नुं दर्शन कर।

हिन्दी अनुवाद :-

तब मैंने कहा, हे बहन! आज तुम मेरे घर चलो और मेरे भाइयों की वत्सला मेरी माँ का दर्शन करो।

गाथा :-

भणियं प्रियंवयाए पिक्खिस्सं माउसिं पडिनियत्ता ।

कारण-वसेण संपइ गच्छिस्सं भाउय-समीवं ॥२१९॥

संस्कृत छाया :-

भणितं प्रियंवदया प्रेक्षिष्ये मातृष्वसारं प्रतिनिवृत्ता ।

कारणवशेन सम्प्रति गमिष्यामि भ्रातृसमीपम् ॥२१९॥

गुजराती अनुवाद :-

प्रियंवदास कह्युं— 'हमणां खास कारणने लीधे हुं मारा भाई नी पासै जउं छुं पाछा फरतां हुं मासीने मलीश!

हिन्दी अनुवाद :-

प्रियंवदा कथन—

अभी विशेष कारण को लेकर मैं अपने भाई के पास जा रही हूँ। वापस लौटते वक्त मैं मौसी से मिलूंगी।

गाथा :-

इत्थत्थे निब्बंधं मा काहिसि उच्छुगा अहं इण्हं ।

तत्तो य मए भणियं एवंति य किंतु पृच्छामि ॥२२०॥

संस्कृत छाया :-

अत्रार्थे निर्बन्धं मा कार्षीः उत्सुकाऽहमिदानीम् ।

ततश्च मया भणितमेवमिति च किन्तु पृच्छामि ॥२२०॥

गुजराती अनुवाद :-

प्रियंवदा कथन

आ विषय मां मने आयह करशो नहि कारणके भाईने मळवा हुं खुब उत्सुक छुं त्याटे मे कह्युं, ठीक छे, पण हुं कंडक पूछवा मांगु छुं.

हिन्दी अनुवाद :-

इस विषय में मुझसे आग्रह मत करना क्योंकि भाई से मिलने के लिए मैं खूब उत्सुक हूँ। तब मैंने कहा ठीक है लेकिन मैं कुछ पूछना चाहती हूँ।

गाहा :-

किंचिवि तं मह साहसु, तीए भणियं तु पुच्छ, साहेमि ।
भणियं च मए भदे! कक्खाए गोविए एत्थ? ॥२२१॥
चित्त-पडे किं अच्छइ लिहियं, चित्तम्मि कोउगं मज्झ ।
ता दंसिज्जउ एयं जइ जोगं दंसिउं भगिणि! ॥२२२॥

संस्कृत छाया :-

किञ्चिदपि, त्वं मम कथय, तथा भणितं तु पृच्छ, कथयामि ।
भणितं च मया भद्रे ! कक्षायां गोपितेऽत्र ? ॥२२१॥
चित्रपटे किमास्ते लिखितं?, चित्ते कौतुकं मम ।
तस्मात् दर्शयतामेतद् यदि योग्यं दर्शयितुं भगिनि! ॥२२२॥ युग्मम्

गुजराती अनुवाद :-

तूं तेनो जवांख आप, 'तेणे कह्युं' तमे पूछे, हुं जवाख आपीश, त्याए
में कह्युं. हे भद्रे! तारी कांख (पडखा) मां छुपावेला चित्रपटमां कोनु चित्र
छे? मने ते जोवानुं विशेष कौतुक छे. माटे हे भगिनी! जो ते चित्र छताववा
योग्य होय तो तुं मने छताव.

हिन्दी अनुवाद :-

तुम उसका उत्तर दो। तब उसने कहा तुम पूछो मैं उत्तर दूंगी। मैंने पूछा
हे भद्रे! तुम्हारी कांख में छुपाये चित्रपट में किसका चित्र है, मुझे उसे देखने
की विशेष इच्छा है, इसलिए हे बहन! यदि वह चित्र दिखाने लायक हो तो मुझे
दिखाओ।

गाहा :-

वियसिय-मुहाइ तीए पसारिउं दंसिओ पडो अम्ह! ।
भणियं च तीइ एसो मए स-हत्थेण लिहिउत्ति ॥२२३॥

संस्कृत छाया :-

विकसितमुखया तथा प्रसार्य दर्शितः पटोऽस्माकम् ।
भणितं च तथा एष मया स्वहस्तेन लिखित इति ॥२२३॥

गुजराती अनुवाद :-

विकसित थयेला मुखवाळी प्रियंवदास चित्रपट खुल्लो करी मने बाताव्यो
अने कहुं 'आ चित्रपट में मारा हाथे चित्रेल छे'!

हिन्दी अनुवाद :-

तब विकसित मुखवाली प्रियंवदा ने चित्रपट खोलकर मुझे दिखाया और
बोली- इस चित्र में जो है वह मेरे हाथ से बना है।

गाहा :-

तथ्य य पडम्मि लिहियं ददूणामणंग-संनिभं तरुणं ।

अमएणव सिता हं जाओ हिययस्स आणंदो ॥२२४॥

संस्कृत छाया :-

तत्र च पटे लिखितं दृष्ट्वाऽनङ्गसंनिभं तरुणम् ।

अमृतेनेव सिक्ताऽहं जातो हृदयस्याऽऽनन्दः ॥२२४॥

गुजराती अनुवाद :-

सुरसुंदरी मूर्च्छ

ते चित्रपटमां कामदेव समान युवानना चित्रने जोडने जाणे अमृत थी
सिंचायेली न होय तेम मारा हृदयमां आनंद थयो.

हिन्दी अनुवाद :-

सुरसुन्दरी मूर्च्छा-

उस चित्रपट में कामदेव समान युवक का चित्र को देखकर जैसे अमृत से
सींचा गया हो, ऐसा हृदय में आनन्द हुआ।

गाहा :-

चिर-परिचियव्व दिट्ठो दिट्ठी आणंद-बाह-पडिहत्था ।

जाया सव्व-सरीरे समुट्ठिओ बहल-रोमंचो ॥२२५॥

संस्कृत छाया :-

चिरपरिचित इव दृष्टो, दृष्टिरानन्दबाष्पपडिहत्थाः(पूर्णा) ।

जाता सर्वशरीरे समुत्थितो बहलरोमाञ्चः ॥२२५॥

गुजराती अनुवाद :-

जाणे घणा समयनो परिचित न होय तेम ते चित्रमां रहेलां युवान ने
जोयो, दृष्टि हर्षश्रुयी भराइ गइ - सर्व शरीर खूब ज रोमांचित थयु.

हिन्दी अनुवाद :-

जैसे बहुत समय से कोई परिचित न हो ऐसे उस युवक को देखा। आँखों में आँसू भर गए, पूरा शरीर रोमांचित हो गया।

गाथा :-

फुरफुरियं अहरेणं उल्लसियं भुय-लयाहिं सहसति ।
ऊससियं च थणेणं थरहरियं ऊरु-जुयलेणं ॥२२६॥

संस्कृत छाया :-

पोस्फुरितमधरेणोल्लसितं भुजलताभ्यां सहसेति ।
उच्छ्वसितं च स्तनेन (थरहरियं) कम्पितं ऊरुयुगलेन ॥२२६॥

गुजराती अनुवाद :-

अधरोष्ठ फटकवा लाग्या, सहसा चाहु लताओ उल्लसित थइ.
स्तनयुग्म उच्छवा लाग्या, छने साथळ कंपवा लाग्या.

हिन्दी अनुवाद :-

होठ फड़कने लगे। अचानक दोनों बाहू उल्लसित हो गए, स्तनद्वय उछलने लगे, दोनों जांघें काँपने लगीं।

गाथा :-

सुत्ताव मुच्छिया इव मत्ता इव विगय-चेयणा जाया ।
सोहग्ग-मंदिरं तं दद्वुणं चित्त-लिहियंपि ॥२२७॥

संस्कृत छाया :-

सुप्तेव मूर्च्छितेव मत्तेव विगतचेतना जाता ।
सौभाग्यमन्दिरं तं दृष्ट्वा चित्रलिखितमपि ॥२२७॥

गुजराती अनुवाद :-

चित्रपटमां आलेखेल सौभाग्यना मंदिर समान ते युवानने मात्र जोईने
पण सुप्त-मूर्च्छित अने मोहितनी जेम हुं चेतना रहित थई।

हिन्दी अनुवाद :-

चित्रित सौभाग्य के मन्दिर के समान उस युवक को देखकर जैसे मोहित होकर नींद में सोए हुए के समान चेतना रहित हो गयी।

गाहा :-

नाऊण मज्झ भाबं वसंतियाए सहीइ संलत्तं ।

को एस तए लिहिओ प्रियंवए! लोयणाणंदो? ॥२२८॥

संस्कृत छाया :-

ज्ञात्वा मम भावं वसंतिक्या सख्या संलपितम् ।

क एष त्वया लिखितः प्रियंवदे ! लोचनानन्दः ? ॥२२८॥

गुजराती अनुवाद :-

माटा भावने जाणी ने माटी सखी वसंतिकाए पूछ्युं- हे प्रियंवदे! नेत्रो ने आनंद आपनाए आ कोनुं चित्र ते आलेख्युं छे?

हिन्दी अनुवाद :-

मेरे भाव को समझकर वसंतिका ने पूछा हे प्रियंवदे! आँखों को सुख देने वाले किसका चित्र तुमने बनाया है?

गाहा :-

भणियमह कुमुडणीए वसंतिए! किं तुहित्य पृच्छाए? ।

कामिणि-हिययाणंदो लिहिओ रइ-विरहिओ मयणो ॥२२९॥

संस्कृत छाया :-

भणितमथ कुमुदिन्या वसंतिके ! किं तवात्र पृच्छया ? ।

कामिनीहृदयाऽऽनन्दो लिखितो रतिविरहितो मदनः ॥२२९॥

गुजराती अनुवाद :-

त्याए कुमुदिनी बोली, हे वसंतिके? ताटे आ बाबतमां पूछ्वाणी शी जरूर छे? कामिनी ना हृदय ने आनंददायक रति रहित कामदेव चित्रेलो छे.

हिन्दी अनुवाद :-

तब कुमुदिनी बोली हे वसंतिके! तुम्हें इस विषय में पूछना क्या जरूरी है? कामिनी के हृदय को आनन्द देने वाले रति रहित कामदेव का चित्र बनाया है।

गाहा :-

ईसिं हसिरुण तओ सिरिमइयाए सहीए संलत्तं ।
एत्तिय-कालं रइ-विरहिओ इमो आसि पंचसरो ॥२३०॥
संपइ रईए सहिओ एसो मयणोत्ति किं न पुलएसि? ।
पयडा रईवि एसा आसन्ना चेव एयस्स ॥२३१॥

संस्कृत छाया :-

ईषद्धसित्वा ततः श्रीमत्या सख्या संलपितम् ।
एतावत्कालं रतिविरहितोऽयमासीत् पञ्चशरः ॥२३०॥
सम्प्रति रत्या सहित एष मदन इति किं न पश्यसि ? ।
प्रकटा रतिरपि एषाऽऽसन्ना चैवैतस्य ॥२३१॥

गुजराती अनुवाद :-

कइंक हास्य कटीने श्रीमती सखीस कह्युं- 'अत्यार सुधी आ कामदेव
रतिथी वियुक्त हतो. हम्णां आ कामदेव रति सहित थयो ते शुं तुं नथी जोती?
साक्षात् आ रतिपण आनी संमीपमां ज छे.

हिन्दी अनुवाद :-

कुछ हंसकर श्रीमती सखी ने कहा, आज तक यह कामदेव रति से
अलग था। आज यह रति सहित हुआ क्या तुम यह नहीं देख रही हो? साक्षात्
यह रति इनके समीप में ही है।

गाहा :-

तं सोउं सव्वाहिं सहत्थ-तालं तु पहसिउं भणियं ।
एवं एयं सिरिमइ! सम्मं हि विणिच्छियं तुमए ॥२३२॥

संस्कृत छाया :-

तच्छ्रुत्वा सर्वाभिः सहस्ततालं तु प्रहस्य भणितम् ।
एवमेतद् श्रीमति ! सम्यग् हि विनिश्चितं त्वया ॥२३२॥

गुजराती अनुवाद :-

ते वचन सांभळी ने सर्व सखीओ हाथ नी ताली दइ. हास्य पूर्वक
खोली हे श्रीमती! आ सत्य ज छे. ताओ निर्णय योग्य ज छे.

हिन्दी अनुवाद :-

यह बात सुनकर सभी सखियाँ हाथ से ताली बजाकर हंसती हुई बोलीं, हे श्रीमती! यह सत्य है, आपका निर्णय योग्य ही है।

गाहा :-

अह लब्ध-चेयणाए विज्ञाया हंति जाय-लज्जाए ।

आगारं विणिगूहिय सकोपमेवं मए भणियं ॥२३३॥

संस्कृत छाया :-

अथ लब्धचेतनया विज्ञाताऽहमिति जातलज्जया ।

आकारं विनिगूह्य सकोपमेवं मया भणितम् ॥२३३॥

गुजराती अनुवाद :-

तेटला मां प्राप्त थयेली चेतनावाळी सवी में तेमना उपहास नुं कारण जाप्युं, उत्पन्न-थयेली लज्जावाळी में आकार ने छुपावी कोप सहित कहुं.

हिन्दी अनुवाद :-

इतने में जैसे मुझे चेतना आ गई हो, उसके उपहास का कारण जानकर, लज्जावाली मैं आकार को छुपाते हुए क्रोध में बोली।

गाहा :-

हंभो! अलिय-पलाविणि! दंसणमित्तंपि नत्थि एएण ।

कत्तो आसन्नत्तं जेण कया हं रई तुमए? ॥२३४॥

संस्कृत छाया :-

हं भो ! अलीकप्रलापिनि ! दर्शनमात्रमपि नास्येतेन ।

कुत आसन्नत्वं येन कृताऽहं रतिस्त्वया ? ॥२३४॥

गुजराती अनुवाद :-

हे असत्य बोलनाची सखी! सनुं दर्शन मात्र पण मने नथी थयुं, तो सनुं समीपपणुं क्यां थी? के जेथी रति तरीके ते कल्पना करी?

हिन्दी अनुवाद :-

हे असत्य बोलने वाली सखी! इनका दर्शन मात्र भी मुझे नहीं हुआ है तो इनके समीप कहाँ से गई कि जिससे तुमने रति के रूप में कल्पना की।

गाहा :-

तीए भणियं मा सहि! रूससु, दिट्टम्मि जेण एयम्मि ।
चित्तम्मि रई जाया तेण रई तं मए भणिया ॥ २३५ ॥

संस्कृत छाया :-

तया भणितं मा सखि ! रुष्य छटे येनैतस्मिन् ।
चित्ते रतिर्जाता तेन रतिस्त्वं मया भणिता ॥ २३५ ॥

गुजराती अनुवाद :-

तेणीस कह्युं- 'हे सखी! कोप न कर, आ चित्रपट जीये छते तारा
चित्तमां आनंद थयो, तेथी में तने रति कही छे.

हिन्दी अनुवाद :-

उसने कहा हे सखी! क्रोध न कर यह चित्रपट देखकर तुम्हें हृदय में आनन्द
हुआ इसलिए मैंने तुम्हें रति कहा।

गाहा :-

भणियं च मए किं वा असमंजस-भासिणीहिं एयाहिं ।
ताव य, प्रियंवए! कहसु एस को वा तए लिहिओ? ॥ २३६ ॥

संस्कृत छाया :-

भणितं च मया किं वाऽसमञ्जसभाषिणीभिरैताभिः ।
तावच्च, प्रियंवदे ! कथय एष को वा त्वया लिखितः ? ॥ २३६ ॥

गुजराती अनुवाद :-

त्यारे में कह्युं- हे प्रियंवदे! गमे तेम इच्छा प्रमाणे बोलनार ते मारी
सखीओ वडे शुं? पहेलातो तुं ज कहे आ चित्रपटमां कोनुं चित्र आलेखेलु
छे?

हिन्दी अनुवाद :-

तब मैंने कहा, 'हे प्रियंवदे! अपनी इच्छा से बोलने वाली मेरी 'सखियों
का क्या'? पहले तो बता तूने इस चित्रपट में किसका चित्र उकेरा है?

गाहा :-

भणियं प्रियंवयाए भाया मह एस मयरकेउत्ति ।
रुवेण जो अणंगो सूरुो चाई कला-कुसलो ॥ २३७ ॥

संस्कृत छाया :-

भणितं प्रियंवदया भ्राता ममैष मकरकेतुरिति ।

रूपेण योऽनङ्गः शूरस्त्यागी कलाकुशलः ॥२३७॥

गुजराती अनुवाद :-

प्रियंवदा बोली, आ मकरकेतु नामे माचे भाई छे. रूप थी ते कामदेव समान छे, शूरवीर, त्यागी तथा कलाओमां कुशल छे.

हिन्दी अनुवाद :-

प्रियंवदा बोली, 'यह मकरकेतु नाम का मेरा भाई है' रूप में वह कामदेव समान है। वह शूर-वीर त्यागी तथा कलाओं में कुशल है।

गाहा :-

कइयावि चित्तफलए कइयावि पडम्मि तस्स पडिरूवं ।

लिहिरुण मए अप्पा विणोइओ एत्तियं कालं ॥२३८॥

संस्कृत छाया :-

कदाचिदपि चित्रफलके कदाचिदपि पटे तस्य प्रतिरूपम् ।

लिखित्वा मयाऽऽत्मा विनोदित एतावन्तं कालम् ॥२३८॥

गुजराती अनुवाद :-

क्यारेक पाटीया ऊपर, क्यारेक वस्त्र ऊपर तेनुं चित्र आलेखीने आटलो समय में माचे आत्मा ने विनोद कराव्यो.

हिन्दी अनुवाद :-

कभी पट के ऊपर, कभी कपड़े के ऊपर उसका चित्र बनाकर इतने समय तक मैंने मेरी आत्मा को विनोद कराया।

गाहा :-

संपइ पुण असमत्था सहिउं विरहं इमस्स चलिया हं ।

ता भगिणि! मुंच वच्चामि जेण पासम्मि तस्सेव ॥२३९॥

संस्कृत छाया :-

सम्प्रति पुनरसमर्था सोढुं विरहमस्य चलिताऽहम् ।

तस्माद् भगिनि ! मुञ्च ब्रजामि येन पार्श्वे तस्यैव ॥२३९॥

गुजराती अनुवाद :-

हवे तेना विरह ने सहवा असमर्थ हूं तेनी पासे जवा नीकळी छुं. माटे हे भगिनी! मने रजा आप, जेथी तेनी पासे जाउं.

हिन्दी अनुवाद :-

अब मैं उसके विरह को सहन करने में असमर्थ हूँ। उसके पास जाने के लिए निकली हूँ। इसलिए हे बहन! मुझे जाने दे जिससे मैं उसके पास जा सकूँ।

गाथा :-

भणियं च सिरिमईए एवं जो गरुय-गुण-गणावासो ।
सो तुह भायाऽवस्सं ददुव्वो होइ अम्हंपि ॥२४०॥

संस्कृत छाया :-

भणितं च श्रीमत्या एवं यो गुरुगुणगणावासः ।
स तव भ्राताऽवश्यं दृष्टव्यो भवत्यस्माकमपि ॥२४०॥

गुजराती अनुवाद :-

त्याटे श्रीमती बोलो— आ प्रमाणे होय तो श्रेष्ठ गुण समूहवाळो जे ताचो भाई छे. ते अवश्य अमाटे जीवो जोइस.

हिन्दी अनुवाद :-

ऐसी बात है तो श्रेष्ठ गुणसमूहवाला जो तुम्हारा भाई है, उसे हमें अवश्य देखना चाहिए।

गाथा :-

चित्त-गएणवि ताव य आणंदो सहि-जणस्स संजणिओ ।
इण्हं पच्चक्खंपि हु दंसिज्जओ अमय-भूओ सो ॥२४१॥

संस्कृत छाया :-

चित्तगतेनाऽपि तावच्चाऽऽनन्दः सखिजनस्य सञ्जनितः ।
इदानीं प्रत्यक्षमपि खलु दर्शनीयोऽमृतभूतः सः ॥२४१॥

गुजराती अनुवाद :-

चित्तपटमा आलेखेल मात्र तेना दर्शनथी सखीजन ने आनंद पेदा थयो तो हवे अमृत समान ते कुमार प्रत्यक्ष दर्शनीय छे.

हिन्दी अनुवाद :-

चित्रपट में बनाए चित्र के दर्शन से सखीजनों को आनन्द हुआ तो अमृत समान वह कुमार तो प्रत्यक्ष दर्शनीय है।

गाहा :-

विहसिय पियंवयाए भणियं मा सहि! समुच्छुगा होसु ।

विज्जाओ ताव साहउ पच्छा सव्वं करिस्सामो ॥२४२॥

संस्कृत छाया :-

विहस्य प्रियंवदया भणितं मा सखि ! समुत्सुका भव ।

विद्यास्तावत् साधयतु पश्चात् सर्वं करिष्यामः ॥२४२॥

गुजराती अनुवाद :-

प्रियंवदाए हसीने कह्युं- हे सखि! तुं उत्सुक न था! हमणा तेने विद्या साधवा दो, पछी सर्व कार्य सिद्ध करीशुं.

हिन्दी अनुवाद :-

प्रियंवदा ने हँसकर कहा, 'हे सखी? तुम उत्सुक मत हो। अभी उसे विद्या साधने दो, बाद में सारे कार्य सिद्ध करेंगे'।

गाहा :-

अविय।

जइ ताव कावि हु अहं ताऽवस्सं तस्स संगमेण सुहं ।

कायव्वं भगिणीए अणुकूलो जइ विही होही ॥२४३॥

संस्कृत छाया :-

अपि च ।

यदि तावत् काऽपि खल्वहं तर्हि अवश्यं तस्य सङ्गमेन सुखम् ।

कर्तव्यं भगिन्याऽणुकूलो यदि विधिर्भविष्यति ॥२४३॥

गुजराती अनुवाद :-

वकी जो त्पारबाद भाग्य अनुकूल हशे तो अवश्य तेना सवागम चड़े भगिनी ने सुखी करीश.

हिन्दी अनुवाद :-

यदि इसके बाद भाग्य अनुकूल होगा तो अवश्य उसके मिलन से बहन को सुखी करूंगी।

गाहा :-

भणियं च मए ताव य एयाओ हवंतु अलिय-भणिरीओ ।

पिय-सहि! तुमंपि संपइ असमंजस-भासिणी जाया ॥२४४॥

संस्कृत छाया :-

भणितं च मया तावच्चैता भवन्तु अलीकभणित्र्यः ।

प्रियसखि ! त्वमपि सम्प्रति असमञ्जसभाषिणी जाता ॥२४४॥

गुजराती अनुवाद :-

त्याटे में कह्युं हे प्रिय सखी! आ सर्व सखीओ तो भिय्या बोलनारी छे. परंतु तुं पण हमणां विपरीत (उपहास वचन) बोलनारी थइ.

हिन्दी अनुवाद :-

तब मैंने कहा, 'हे प्रिय सखी! ये सभी सखियाँ तो झूठ बोलने वाली है परन्तु तू भी अभी उल्टा (उपहास) बोलने वाली हो गयी'।

गाहा :-

अइनिउणं किल चित्तं अम्हे कोऊहलेण पुलएमो ।

तुम्हे सब-हिययाओ अन्नह सव्वं वियप्पेह ॥२४५॥

संस्कृत छाया :-

अतिनिपुणं किल चित्रं वयं कुतूहलेन पश्यामः ।

यूयं शठहृदयाऽन्यथा सर्वं विकल्पयत ॥२४५॥

गुजराती अनुवाद :-

अमे तो अति सुंदर आ चित्रने कुतूहल मात्र थी जोइए छीए. ज्याटे शठ हृदयवाळा तमे जूठी ज कल्पना करो छे.

हिन्दी अनुवाद :-

हम तो अति सुन्दर इस चित्र को कुतूहल मात्र के कारण देख रहे हैं जबकि शठ हृदयवाली तुम झूठी कल्पना कर रही हो।

गाहा :-

अह कुमुइणीए, भणियं एवं एयंति नत्थि संदेहो ।

ता सहि! तुमंपि एयं चित्तं लिहिउं समब्भससु ॥२४६॥

संस्कृत छाया :-

अथ कुमुदिन्या भणितमेवं एतदिति नास्ति सन्देहः ।

तस्मात् सखि ! त्वमपि एतत् चित्रं लेखितुं समभ्यस्य ॥२४६॥

गुजराती अनुवाद :-

ते सांभली कुमुदिनी बोली, 'हा ते प्रमाणे छे. रमां कोई शंका नथी, माटे हे सखी। तूं पण आ प्रमाणे चित्र दोरवा प्रयत्न कर.

हिन्दी अनुवाद :-

यह सुनकर कुमुदिनी बोली, 'हाँ उसके ही मुताबिक है, इसमें कोई शंका नहीं है।' इसलिए हे सखी! तूं भी इसी प्रकार चित्र बनाने का प्रयत्न करो।

गाहा :-

अप्पेसु पडं एयं पियंवाए! जेण चित्तमम्भसइ ।

तुह भगिणी, अह तीए समप्पिओ कुमुइणीइ पडो ॥२४७॥

संस्कृत छाया :-

अर्पय पटमेतत् प्रियंवदे ! येन चित्रमभ्यस्यति ।

तव भगिनी, अथ तथा समर्पितः कुमुदिन्यै पटः ॥२४७॥

गुजराती अनुवाद :-

हे प्रियंवदे! आ चित्रपट रने आपी दे, जेथी चित्र दोरवानो अभ्यास करे, त्याटे तेणीस चित्रपट कुमुदिनी ने आप्यो.

हिन्दी अनुवाद :-

हे प्रियंवदे! यह चित्रपट इन्हें दे दो जिससे यह चित्र बनाने का अभ्यास करें। तब उसने कुमुदिनी को चित्रपट दिया।

गाहा :-

संभासिउ ताहिं पियंवया सा तओ ममं उप्पइया नहग्गे ।

सहीहि जुत्ता बहु-केलियाहिं अहंपि पत्ता निय-मंदिरम्मि ॥२४८॥

संस्कृत छाया :-

सम्भाष्य तदा प्रियंवदा सा ततो मामुत्पतिता नभोऽग्रे ।

सखीभि-र्युक्ता बहुकेलिकाभिरहमपि प्राप्ता निजमन्दिरे ॥२४८॥

गुजराती अनुवाद :-

पछी ते प्रियंवदा माटी साथे वात कटी आकाश मार्गे चाली गइ. हुं
पण अनेक प्रकार नी क्रीडा कटती सखीओ साथे पोताना आवासे गइ।

हिन्दी अनुवाद :-

उसके बाद प्रियंवदा मेरे साथ बात कर आकाश मार्ग से चली गई। मैं
भी अनेक प्रकार की क्रीड़ा करती हुई सखियों के साथ अपने घर चली आई।

गाहा :-

साहु-धणोसर-विरइय-सुबोह-गाहा-समूह-रम्माए ।

रागगि-दोस-विसहर-पसमण-जल-मंत-भूयाए ॥ २४९ ॥

एसोवि परिसमप्यइ पियंवया-दंसणोत्ति नामेण ।

सुरसुंदरी-कहाए एक्कारसमो परिच्छेओ ॥ २५० ॥

एकादशः परिच्छेदः समाप्तः

संस्कृत छाया :-

साधुधनेश्वरविरचितसुबोधगाथासमूहरम्यायाः ।

रागाग्निद्वेषविषधरप्रशमनजलमन्त्रभूतायाः ॥ २४९ ॥

एषोऽपि परिसमाप्यते प्रियंवदादर्शन इति नाम्ना ।

सुरसुन्दरीकथायाः एकादशमः परिच्छेदः ॥ २५० ॥

॥एकादशः परिच्छेदः समाप्तः॥

गुजराती अनुवाद :-

धनेश्वरमुनि विरचित सुबोधगाथा ना समूह थी मनोहर राग रूप अग्नि
तेम ज द्वेष रूप सर्प ना प्रशमन माटे जल तथा मन्त्ररूप प्रियंवदा दर्शन'
नाम नो सुसुन्दरी कथानो अग्यारमो परिच्छेद समाप्त थयो (पूर्ण थयो)

हिन्दी अनुवाद :-

धनेश्वर मुनि विरचित सुबोध गाथा के समूह रूप मनोहर रागरूप अग्नि और
उसमें द्वेषरूप सर्प को समाप्त करने के लिए जल तथा मन्त्ररूप 'प्रियंवदा दर्शन'
नामक सुरसुन्दरी कथानक का ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।



ऋद्धि - ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोहिजिणाणं।

मंत्र - ॐ ह्रीं थीं क्लीं जलदेवताभ्यो नमः स्वाहा।

प्रभाव - जाल में मछलियाँ नहीं फँसती हैं तथा जल का भय दूर होता है।

Spreading of non-violence and
removal of fear of water.